लेखक

प.पू. गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी महाराज

प्रकाशन

श्री सम्यग्ज्ञान दिगंबर जैन विराग विद्यापीठ
बताशा बाजार, C/O कीर्तिस्तंभ,
भिण्ड - (म.प्र.)

पॉप्युलर प्रकाशन, सुरत (गुजरात)

☛ अवसर : प.पू. गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी महाराज
के सुरत आगमन पर प्रकाशित

☛ कृति : आध्यात्मिक - शंका समाधान

☛ लेखक : प.पू. गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी महाराज

☛ संस्करण : प्रथम, १००० प्रतियाँ

☛ पुण्यार्जक : पॉप्युलर परिवार, सुरत (गुजरात)

☛ सन् : जनवरी २००१

☛ मूल्य : सदुपयोग, लागत - १०-०० रु.

☛ प्रकाशन : श्री सम्यग्ज्ञान दिगंबर जैन विराग विद्यापीठ
बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

☛ मुद्रक - प्रकाशक : न्यू पॉप्युलर प्रकाशन, सुरत (गुजरात)

समर्पण

१. उनके लिये जो स्वाध्याय शील है।

२. उनके लिये जो हठाग्रह मुक्त है।

३. उनके लिये जो तत्त्व जिज्ञासु है।

४. उनके लिये जो आगम व आचार्यों के वचनों को प्रामाणिक मानते हैं।

५. उनके लिये जो "पै कछु कहूँ कही मुनि यथा" को सच्चरितार्थ करते हैं।

६. उनके लिये जो अन्यथा प्ररुपणा से भवभीरू है।

७. उनके लिये जो शास्त्रों का निष्पक्षता पूर्ण सम्यक् अर्थ करते हैं।

८. उनके लिये जो प्रकरण तथा पात्रानुसार आचार्यों की विवक्षा का यथोचित् मनन के बाद ही कथन करते हैं।

९. उनके लिये जो पारस्परिक तत्त्व चर्चा को सुनने व समझने का प्रयास करते है।

१०. उनके लिये जो जिनेन्द्र तत्त्व मनीषा को समझने और समझाने में यथोचित् सम्मान, वात्सल्य व करुणाई है।

११. उनके लिये जो अपने आप को लघु/तत्त्वाभ्यासी मानते है।

१२. उनके लिये जो जिज्ञासाओं की सविनय पृच्छना करते है।

१३. उनके लिये जो मन के संतुष्ट न होने पर भी राग-द्वेष नहीं करते है।

१४. उनके लिये जो भाषा, लेखन और प्रकाशन में त्रययोगों को सम्हालते है।

१५. उनके लिये जो रत्नत्रय व रत्नत्रय धारियों विषयक एक पक्षीय बातों को सुन-पढ़कर अविनय, आलोचन व दुष्प्रचार नहीं करते है।

卐 ॥ णमोकार महामंत्र ॥ 卐

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं

अर्थ : अरिहंतो को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोकवर्ती सब साधुओं को नमस्कार हो।

॥ णमोकार मंत्र का माहात्म्य ॥

एसो पंच णमोकारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं॥

अर्थ : यह पंच नमस्कार मंत्र सभी पापों को नष्ट करने वाला है एवं सर्व मंगलों में पहला मंगल है।

॥ सरस्वती स्तुति ॥

नमामि भारती जैनीं सर्व सन्देह नाशिनीम्।
भानुभामिव भव्यानां मनः पद्मविकासिनीम्॥ सु.सं.३

अर्थ : समस्त संदेहो को नष्ट करने वाली तथा सूर्य की प्रभा के समान भव्य जीवों के हृदय कमल को विकसित करने वाली जिनवाणी को मैं नमस्कार करता हूँ।

अर्हंत, आगम व आचार्यों की बात.....

प्राय: लोग "अन्तर्मन की तो बात करते है किन्तु" आगम की नहीं करते। सुनी सुनाई बात करते है किन्तु स्वयं पढ़ने का प्रयत्न नहीं करते है। जितना और जैसा पढ़ा दिया है उतना और वैसा तो कह देते है किन्तु इसके आगे स्वयं पढ़ने का प्रयत्न नहीं करते । पढ़ाई सुनाई गई बातों पर ही निर्णय ले बैठते है किन्तु स्वयं आगम का मंथन नहीं करते अथवा शब्दों को तो पकड़ लेते है किन्तु आगम की अपेक्षाओं तथा प्रकरणों के सही अर्थ तक नहीं पहुँच पाते है इसलिये येन केन प्रकारेण अपनी मान्यता की सिद्धि तो की जाती है किन्तु सत्य की सिद्धि नहीं की जाती हैं। ध्यान रखिये, अंतर्मन मिथ्यादृष्टि का भी होता है, उसका भी हृदय होता है किन्तु वह (अंतरमन की बात) प्रामाणित नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार अंतरात्मा कोई केवल ज्ञानी नहीं, किन्तु वह भी छद्मस्थ है क्षायोपशमिक ज्ञानी है वह भी सर्वज्ञ वचन को अथवा तदानुसार आचार्यों के, शास्त्रों के वचन को ही प्रमाण मानता है । मात्र अन्तर्मन या अन्तरात्मा के वचन को नहीं। एक शब्द के दो अर्थ ही नहीं, किन्तु अनेक अर्थ लगाये जा सकते है क्योंकि कहा भी है कि "**शब्दानामनेकार्थ:**" अर्थात् शब्दों के अनेक अर्थ होते है अत: हमें प्रकरण के अनुसार जहाँ जो अर्थ आचार्यों ने किया है वहाँ वैसा ही अर्थ लगाना चाहिए। तो कभी भी अनेकार्थ होने पर भी, सम्यक् अपेक्षा कृत होने पर भी कोई अंतर नहीं आयेगा। हाँ, जहाँ जो अर्थ आचार्यों या आगम से निकलता ही न हो उसे हम निकालने का बलात् प्रयत्न करे तो जरुर अंतर आ जायेगा। फासला हो जायेगा, मत भेद और फिर मन भेद आ जायेगा, स्वतंत्र संप्रदाय बन जायेगा। संप्रदाय जन्म ही तब लेता है जब कि सत्य आगम की बात को नहीं, किन्तु अंतर्मन की बात को प्रामाणिकता दे देता है तब एक ही शब्द के दो अर्थ तो हो सकते है किन्तु एक ही भाव / प्रयोजन / उद्देश्य अपेक्षा के दो अर्थ नहीं हो सकते है फिर भी एक ही भाव के दो अर्थ निकलकर उसमे कोई विशेष फर्क नहीं मानना, सबसे बड़ी भूल है अंतर की बात को पकड़ने के स्तर की अपेक्षा, अर्हंत की बात को पकड़ने का स्तर बनाना चाहिए।

अंतर्मन की बात गलत भी हो सकती है क्योंकि छद्मस्थ की बात है किन्तु अर्हंत की बात कभी गलत नहीं हो सकती। वर्तमान में कोई केवली, मन: पर्यय ज्ञानी नहीं है जो किसी के अंतर की बात को जान सके। काश, चतुर्थ काल भी होता और केवली या मन: पर्यय ज्ञानी भी होते तो वे आगमानुसार आपके अंतरमन की बात को जानकर प्रामाणिकता दे देते किन्तु आगम विरुद्ध अंतरमन की बात को जानकर प्रमाणिकता नहीं देते। अत: हम अपनी सूक्ष्म गहरी बात

(भाव) को पकड़ने में ज्ञान का उघाड़पन (क्षयोपशम) की अपेक्षा आगम की सूक्ष्म गहरी बात (भाव) की योग्यता तथा क्षमता को जगायें तो कभी भी कोई भी अंतर नहीं पडेगा अनंत ज्ञानी का भी एक ही मत होगा किन्तु जब अपने अपने अन्तरमन की बात कही जाएगी तो "**मेनी मेन मेनी माईंडस**" अथवा **कुण्डे कुण्डे पयः, तुण्डे तुण्डे सरस्वती अर्थात्** जितने गड्ढे होंगे, उतने प्रकार का पानी होगा। उसी प्रकार जितने प्रकार के मनुष्य होंगे, उतने प्रकार का सभी का अपना अपना सोच होगा। इसलिये बल देना ही उचित होगा "निश्चय सम्यग्दर्शन जो गृहस्थावस्था मे तीर्थंकर आदि के होता है वह वस्तुतः सराग तथा व्यवहार ही है उसे वीतराग या निश्चय मानना नितांत भूल है" कहा भी है **शुभरागयोगात् सराग सम्यगदृष्टियो भवन्ति। या पुनस्तेषां (निश्चय सम्यत्वं गृहस्थावस्थाया तीर्थंकर परमदेव भरत सगर राम पाण्डवादीनां विद्यते न च तेषां वीतराग चारित्रम्) सम्यक्त्वस्य निश्चय सम्यक्त्व संज्ञा वीतराग चारित्र विना भूतस्य निश्चय सम्यक्त्वस्य निश्चय सम्यक्त्वस्य परंपरया साधकत्वादिति। वस्तुवृत्त्या तु तत्सम्यक्त्वं सराग सम्यक्त्वा ख्यं व्यवहार सम्यक्त्वमेवेति भावार्थः।**

अर्थ : शुभराग के योग से सराग सम्यदृष्टि होते है जो पुनः उनके (निश्चय सम्यक्त्व गृहस्थावस्था मे तीर्थंकर परमदेव, भरत, सगर, राम, पाण्डव आदि को होता है किन्तु उनके वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है) सम्यक्त्व को निश्चय सम्यक्त्व संज्ञा है वह वीतराग चारित्र के अविनाभाव भूत निश्चय सम्यक्त्व के परम्परा से साधक होने के कारण है वास्तव में तो वह सम्यक्त्व सराग सम्यक्त्व के द्वारा कहा जाने वाला व्यवहार सम्यक्त्व ही है ऐसा भावार्थ हुआ।

इस प्रकार गृहस्थावस्था में तीर्थकरादि को सराग सम्यग्दर्शन ही आगम से सिद्ध है अब उसे कोई वीतराग सिद्ध करना चाहे तो उसके अंतरमन की तो बात हो सकती है किन्तु आगम की नहीं।

व्यवहार संयम, सराग संयम, अपहृत संयम, निश्चय संयम, वीतराग संयम, परमोपेक्षा संयम के साधक होने से व्यवहार ही है उसे निश्चय साध्य मान लेना या साधक ही नहीं मानना, नितान्त भूल ही है।

और ये बात भी सिद्ध ही है कि अविरत सम्यग्दृष्टि को या देश संयमी (संयमासंयमी) को निश्चय सम्यक्त्व या वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान / स्वानुभूति या सामायिकादि काल में शुद्धोपयोग तो पाया ही नहीं जाता है तो फिर भी उसे सिद्ध करने का प्रयास आगम के अर्थों को तोड़ना-मरोड़ना ही कहलायेगा।

"श्रावकाणामपि सामायिकादि काले शुद्ध भावना दृश्यते"

इस वाक्य में कहा है कि श्रावको को भी सामायिक आदि के काल में शुद्ध भावना देखी जाती है। ध्यान दें उपर्युक्त वाक्य में शुद्ध भावना शब्द आया है न कि शुद्धोपयोग। यहाँ भावना और उपयोग दोनों को एक अर्थ में ग्रहण नहीं करना चाहिए।

भावना का अर्थ है **''पुनश्पुनश्चिंतनं भावना''** (पं. का. ता. वृ. ४३) अर्थात् बार-बार चिंतन करना भावना है अथवा **''अनंतज्ञानोऽहमनन्त-सुखोऽहमित्यादि भावना''** (वृ.द.सं. टी. ४८/२०१/२०४) अथवा **अविरत सम्यग्दृष्टि, देशव्रत, प्रमत्त संयत गुणस्थान तारतम्येन क्रमशः शुभोपयोग-भवति। अप्रमत्त गुणस्थानमादि कृत्वा क्षीणकषायपर्यन्ते गुणस्थान षट् पर्यन्तं क्रमेण उत्तममध्यमजघन्य भेदेन क्रमशः शुद्धोपयोग विद्यते।**

कुछ लोग अंदर की बात को निश्चय तथा बाह्य अभिव्यक्ति को व्यवहार कहते है। जबकि आगम (**निश्चनयोऽभेद विषयो, आ.प. १०**) अभेद को विषय करने वाला निश्चय नय है अथवा (**आत्माश्रितो निश्चयनयः, स.सा.आ. २७२**) निश्चय नय आत्मा के आश्रय से होता है। इसमे अंदर की कोई बात ही नहीं है।

इसी प्रकार व्यवहार नय (**पराश्रित व्यवहारः, स.सार आ. ख्या. २७२**) अथवा (**व्यवहार नयो भेद विषयः**) कहा, यहाँ भी बाहर की कोई बात नहीं है। यदि निश्चय-व्यवहार को अंदर-बाहर की बात कहे सो भी गलत है क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव जो-जो भी पुण्य क्रिया करता है वह अदर से करता है तभी स्वर्गादि के कारण बनती शुभलेश्या रुप परिणाम बनते है। यदि मात्र बाह्य ही रहे तो भावशून्य क्रिया तो स्वर्ग का भी कारण नहीं बन सकेगी, इसी तरह मिथ्यादृष्टि का अंतरभाव निश्चय मिथ्यादृष्टि तथा बाह्य क्रियाओं को व्यवहार मिथ्यादृष्टि कहना पड़ेगा, किन्तु ऐसा किसी शास्त्र में पढने में नहीं आया।

अतः अध्यात्म दृष्टि से अंतर को निश्चय और बाह्य को व्यवहार नहीं कहना चाहिए। अंतरंग-बहिरंग शब्द आगम भाषा में किये जाते है जबकि निश्चय- व्यवहार शब्द का प्रयोग मुख्य रुप से अध्यात्म भाषा में होता है।

प्रायः साधुजनों में स्वाध्याय के साथ आगम के शोधात्मक / खोजात्मक वृत्तियाँ कम पाई जाती है प्रायः वे स्वाध्याय तो करते है किन्तु जनमानस में उलझे हुए विषयों के शोध कम करते है वे प्रायः पूजा, विधान, प्रवचन, प्रकाशन, सम्मेलन या निर्माण आदि बाह्य प्रभावना में ही सलग्न देखे जाते है। तथा विद्वत जगत् तो प्रायः लुप्त सा ही होता जा रहा है। जो है सो सर्विस प्रधान

है जो दूसरों के आलेखों को पढ़कर अपना आलेख तो बना लेते है गोष्ठी या पत्रिका में प्रकाशित भी कर देते है पर आलेख लेखन में जो मेहनत होना चाहिए वह नहीं होती, उसका मुख्य कारण है उनके पास न तो उतना समय रहता है और न ही उतनी रुचि तथा परिश्रम, अतः कोई ठोस नये काम नहीं हो पाते है।

संपादकों की कलम समालोचना के लिए जितनी जल्दी उठ जाती है उतनी समीक्षात्मक नहीं उठ पाती है।

कोई किसी भी पक्ष का विद्वान क्यों न हो किन्तु उसे तथा उसके परिश्रम को प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि उसने आगम के किसी पहलु की गहराई में उतरने की पहल तो की, यदि आज गलत भी हो, तो कल और खोज होने पर वह सम्यक् तत्त्व तक पहुँच सकता है। उसकी अपशब्दों द्वारा भर्त्सना नहीं, किन्तु सम्मानीय शब्दों द्वारा दिशा निर्देश देना चाहिए, समालोचना में किसी के नाम के उजागर की अपेक्षा "कुछ लोगों की मान्यता ऐसी है" ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए ताकि उसके सम्मान में, सामाजिक प्रतिष्ठा में तथा धर्म रुचि में, चिंतन, मंथन, शोध में कोई गलत प्रभाव न पड़े आपसी कटुता न बड़े अपितु परस्पर में एक दूसरे के अभिप्राय समझने के तथा समझाने में वात्सल्य भाव बना रहे, समय - समय पर एक दूसरे के साथ बैठकर गोष्ठियों में विचार विमर्श होता रहे। तभी आगम की सच्ची भक्ति तथा धर्म की सच्ची प्रभावना होती रहेगी। और उलझे विषयअवश्य ही सुलझेंगे। नई पीढ़ी में भी ज्ञान चेतना जाग्रत हो सकेगी। और इतर धर्म वालों पर भी सम्यक् प्रभाव पड़ेगा, कटुता से अलगांव और अलगाव से विद्वेष भाव जगते है जो विसंवाद, विवाद तथा विच्छेद के कारण बन जाते है जिससे तत्त्व शोध नहीं, किन्तु अहंकार बढ़ता है और प्रतिशोध जगते है। विद्वजन अवश्य ही उक्त बातों पर ध्यान दें।

मैंने प्रस्तुत आध्यात्मिक शका-समाधान को आगम के परिपेक्ष्य में लिखने का एक लघु प्रयास किया है। इसमें किसी भी प्रकार का पक्षव्यामोह या दुराग्रह नहीं; जो भी है लगभग सभी आगम के समाधान है। फिर भी यदि किसी को इस विषय में और भी अन्य प्रकार से भी प्रमाण मिले, वे सभी आमंत्रित है। अगले प्रकाशन में उन्हें भी जोड़ा जायेगा। मुख्य लक्ष्य मात्र इतना ही है कि सामान्य जन आगम और अध्यात्म के इन वाक्यों द्वारा अपना भ्रम निवारण करें, जो सही सूझ उत्पन्न करते है तथा आप अपने सम्यक्त्व का यथार्थ परिचय दें।

इत्यलं विस्तरेण

अनुक्रमणिका

१. नय

२. निश्चय नय

३. व्यवहार नय

४. उपनय

५. द्रव्यार्थिक नय

६. पर्यायार्थिक नय

७. सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति

८. व्यवहार सराग सम्यग्दर्शन

९. निश्चय सम्यग्दर्शन तथा स्वरुपाचरण चारित्र

१०. निश्चय ज्ञान, स्वसंवेदन श्रुतज्ञान

११. आत्मा

१२ चारित्र

१३. ध्यान

१४. उपयोग

१. **शंका : तत्त्व का ज्ञान किसके द्वारा होता है?**

समाधान : प्रमाणनयैरधिगमः। (त.सू. १/६)

अर्थ : प्रमाण और नय के द्वारा तत्त्व या पदार्थों का ज्ञान होता है।

२. **शंका - नय किसे कहते है?**

समाधान : (ध. १/१, १, १/३, ४/१०) में कहा गया है -

उच्चारियमत्थपदं णिक्खेवं वा कयं तु दट्ठूण।

अत्थं णयंति पच्चंतमिदि तदो ते णया भणिया ॥३॥

णायदित्ति णायो भणियो बहुहि गुण पज्जएहि जं दव्वं।

परिणामखेत्तकालं तरेसु अविणट्ठ सब्भावं ॥४॥

अर्थ : उच्चारण किये अर्थ, पद और उसमें किये गये निक्षेप को देखकर अर्थात् समझकर पदार्थ को ठीक निर्णय तक पहुँचा देता है इसलिये वे नय कहलाते है।

(क.पा. १/१३-१४/२१०/गा. ११८/२५९) अनेक गुण और अनेक पर्यायों सहित अथवा उनके द्वारा, एक परिणाम से दूसरे परिणाम में, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में, एक काल से दूसरे काल में अविनाशी स्वभाव रुप से रहने वाले द्रव्य को जो ले जाता है अर्थात् उसका ज्ञान करा देता है उसे नय कहते है।

(आ.प./१८१) नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन्स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः।

अर्थ : नाना स्वभावों से हटा कर वस्तु को एक स्वभाव में जो प्राप्त करायें उसे नय कहते है।

नय चार अर्थों में प्रयुक्त हैं

(१) वक्ता के अभिप्राय अर्थ में (ति.प. /१/८३)

णाणं होदि प्रमाणं णओ वि णादुस्स हिदियभावत्थो ॥८३॥

सम्यग्ज्ञान को प्रमाण और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं।

ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः। (आ.प. /१८१)

अर्थ : ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते है।

(धवला ९/४, १, ४५/६) में कहा गया है -

तथा प्रभाचन्द्र भट्टारकैरप्यभाणि - प्रमाणव्यपाश्रय परिणामवशीकृतार्थ विशेषप्ररुपणप्रवणः प्रणिधिर्यः स नय इति। प्रमाणव्यपाश्रयस्तत्परिणाम-विकल्पवशीकृतानां अर्थ विशेषाणां प्ररुपणे प्रवणः प्रणिधानं प्रणिधिः प्रयोगो व्यवहारात्मा प्रयोक्ता व स नयः।

अर्थ : प्रभाचंद्र भट्टारक ने भी कहा है- प्रमाण के आश्रित परिणाम भेदों से वशीकृत पदार्थ विशेषों के प्ररुपण में समर्थ जो प्रयोग हो वह नय हैं। उसी को स्पष्ट करते है - जो प्रमाण के आश्रित है तथा उसके आश्रय से होने वाले ज्ञाता के भिन्न-भिन्न अभिप्रायों के अधीन हुए पदार्थ विशेषों के प्ररुपण में समर्थ है, ऐसे प्रणिधान अर्थात् प्रयोग अथवा व्यवहार स्वरुप प्रयोक्ता का नाम नय हैं।

(२) एक देश वस्तुग्राही अर्थ में

(स.सि. १/३३/१४०/७) में कहा है -

वस्तन्यनेकान्तात्मन्य विरोधेन हेत्वर्पणात्साध्य विशेषस्य यथात्म्य-प्रापणप्रवणः प्रयोगो नयः।

अर्थ : अनेकान्तात्मक वस्तु में विरोध के बिना, हेतु की मुख्यता से साध्य विशेष की यथार्थता को प्राप्त कराने में समर्थ प्रयोग को नय कहते हैं।

(न.च.वृ. / १७४) में कहा है -

वत्थुअंससंगहणं / तं इह णयं... /

अर्थ : वस्तु के अंश को ग्रहण करने वाला नय होता है।

(का. अ. / मू. / २६४) में कहा है -

णाणा धम्मजुदं पि य एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं।
तस्सेय विवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाणं ॥

अर्थ : नाना धर्मों से युक्त भी पदार्थ के एक धर्म को ही नय कहता है, क्योंकि उस समय उस ही धर्म की विवक्षा है, शेष धर्म की विवक्षा नहीं हैं।

(पं. का. / पू. / ५०४) में कहा है -

इत्युक्त लक्षणेऽस्मिन् विरुद्धधर्मद्वयात्मके तत्त्वे।

तत्राप्यन्यतरस्य स्यादिह धर्मस्य वाचकश्च नयः ॥

अर्थ : दो विरुद्ध धर्म वाले तत्त्व मे किसी एक धर्म का वाचक नय होता है।

(३) प्रमाण द्वारा गृहीत वस्तु का एक अंश ग्रहण अर्थ में -

(आ. प./१८१) में कहा है -

प्रमाणेन वस्तु संगृहीतार्थैकांशो नयः।

अर्थ : प्रमाण के द्वारा सगृहीत वस्तु के अर्थ के एक अंश को नय कहते हैं।

(धवला १/१, १, १/८३/९) में कहा है -

प्रमाणपरिगृहीतार्थैक देशे वस्त्वध्यवसायो नयः।

अर्थ : प्रमाण के द्वारा ग्रहण की गई वस्तु के एक अंश में वस्तु का निश्चय करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं।

(४) श्रुतज्ञान का विकल्प अर्थ में -

अर्थ : श्रुत विकल्पो वा (नयः) । (आ.पा./१८१)

अर्थ : श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं।

उपरोक्त लक्षणों का समीकरण :

को नयो नाम। ज्ञातुरभिप्रायो नयः। अभिप्राय इत्यस्य कोऽर्थः। प्रमाण परिग्रहीतार्थैक देशवस्त्वध्यवसायः अभिप्रायः। युक्तितः प्रमाणात् अर्थ परिग्रहः द्रव्यपर्याययोरन्यतरस्य अर्थ इति परिग्रहो वा नयः। प्रमाणेन परिच्छिन्नस्य वस्तुनः द्रव्ये पर्याये व वस्त्वध्यवसायो नय इति यावत् । (ध. ९/४ : १,४५/१६२/७)

प्रश्न : नय किसे कहते है ?

उत्तर : ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं।

प्रश्न : अभिप्राय इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : प्रमाण से गृहीत वस्तु के एक देश में वस्तु का निश्चय ही अभिप्राय है। (स्पष्ट ज्ञान होने से पूर्व तो) युक्ति अर्थात् प्रमाण से अर्थ के ग्रहण करने

अथवा द्रव्य और पर्यायों में से किसी एक को ग्रहण करने का नाम नय है। (और स्पष्ट ज्ञान होने के पश्चात्) प्रमाण से जानी हुई वस्तु के द्रव्य और पर्याय में अर्थात् सामान्य या विशेष में वस्तु के निश्चय को नय कहते हैं, ऐसा अभिप्राय है।

३. शंका : नय के मुख्य कितने भेद है?

समाधान : (आलाप पद्धति / ४० / गा. ४) में कहा है -

णिच्छय ववहारणया, मूलम भेया णयाण सव्वाणं।

णिच्छय साहण हेऊ, दव्वय पज्जत्थिया मुणह ॥

अर्थ : सर्व नयों के मूल निश्चय व व्यवहार ये दो नय हैं। द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक ये दोनों निश्चय नय के साधन या हेतु है।

यथा सिद्धरसः पुंसि निष्फलो भाग्यहीन के।

तथा चारित्र हीनस्य तत्त्वज्ञानं च निष्फलम् ॥ सु.सं.४० ॥

अर्थ : जिस प्रकार भाग्यहीन मनुष्य के पास सिद्धरस का होना निष्फल है उसी प्रकार चारित्रहीन का तत्त्वज्ञान निष्फल है।

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसया च. विद्वत्प्रणामं च सुशीलता च।

एतानि यो धारयते स विद्वान, न केवलं यः पठते स विद्वान ॥ सु.स.४१ ॥

अर्थ : सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वानों के प्रति नम्र भाव और सुशीलता को जो धारण करता है वह विद्वान है, न कि जो केवल पढ़ता है वह विद्वान है।

यस्य देवे पराभक्तिर्यता देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता हयर्थाः प्रकाश्यन्ते महात्मन ॥ सु.सं. ७१३ ॥

अर्थ : जिसकी देव में तथा देव के समान गुरु में परम भक्ति होती है उस महानुभाव के आगम में प्रतिपादित ये जीवाजीवादि पदार्थ निश्चय से प्रकट होते है।

भावार्थ : देव और गुरु की भक्ति करने वाले पुरुष को ही जीवाजीवादि नौ पदार्थं का श्रद्धान प्रकट होता है।

४. शंका : आगम ग्रंथों में निश्चय नय का स्वरूप किस प्रकार कहा गया है?

समाधान : निश्चयनय एवंभूतः (श्लो. वा. १/७/२८/५८५/१)

अर्थ : निश्चय नय एवंभूत नय है।

निश्चय नयोऽभेद विषयो (आ.प. २१६)

अर्थ : निश्चय नय का विषय अभेद द्रव्य है।

अभेदानुपचरितया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः (आ.प. २०४)

अर्थ : जो अभेद व अनुपचार से वस्तु का निश्चय करता है, वह निश्चय नय है।

५. शंका : अध्यात्म ग्रंथों में निश्चय नय का स्वरूप किस प्रकार कहा गया है?

समाधान : आत्माश्रितो निश्चय नयः (स.सा. आ. २७२)

अर्थ : निश्चय नय आत्मा के आश्रित है।

निश्चय नयस्तु द्रव्याश्रितः। (स.सा.आ. ५६)

अर्थ : निश्चय नय द्रव्याश्रित है।

६. शंका : निश्चय नय के कितने व कौन से भेद हैं?

समाधान : देखिये **आ. प. सू. २१७**

तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्धनिश्चयोऽशुद्धनिश्चयश्च।

अर्थ : निश्चय नय दो प्रकार का हैं - शुद्ध निश्चय और अशुद्ध निश्चय।

७. शंका : शुद्ध निश्चय नय को सविस्तार समझाइए?

समाधान : देखिये **स.सा.गा. ५६**

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।

गुणठाणंता भावा ण दु केइ णिच्छय णयस्स।।

अर्थ : वर्ण को आदि लेकर गुणस्थान पर्यंत भाव कहे गये हैं। वे व्यवहार नय से ही जीव के होते हैं परंतु शुद्ध निश्चय नय से तो इनमे से कोई भी जीव के नहीं है।

अथवा

सुद्धो जीव सहावो जो रहिओ दव्व भाव कम्मेहिं।

सो णिच्छयादो समासिओ सुद्धणाणीहिं ॥ वृ.न.च. ११५॥

अर्थ : शुद्ध निश्चय नय से जीव स्वभाव, द्रव्य व भाव कर्मों से रहित कहा गया है।

अथवा

तत्र निरूपाधि गुणगुण्यभेद विषयकः शुद्ध निश्चयो यथा केवलज्ञानादयो जीव इति (आ.प. २१८)

अर्थ : निरूपाधिक गुण व गुणी मे अभेद दर्शाने वाला शुद्ध निश्चय नय है जैसे केवलज्ञानादि ही जीव है।

अथवा

साक्षाच्छुद्ध निश्चय नयेन स्त्री पुरुष संयोग रहित पुत्रस्येव सुधाहरिद्रा संयोगरहितरङ्ग विशेषस्येव तेषामुत्पत्तिरेव नास्ति कथमुत्तरं पृच्छाम इति। (द्र.स.टी. ४८/२०६/४)

अर्थ : साक्षात शुद्ध निश्चय नय से तो जैसे स्त्री पुरुष संयोग के बिना पुत्र की उत्पत्ति नहीं होती, चूना व हल्दी के संयोग बिना लाल रंग की उत्पत्ति नही होती, उसी प्रकार राग-द्वेष की उत्पत्ति ही नहीं होती, फिर इस प्रश्न का उत्तर ही क्या?

८. शंका : **क्या शुद्धाशुद्ध निश्चय नय द्रव्यार्थिक नय है?**

समाधान : हाँ, देखें **आलाप पद्धति सूत्र - २०३**

शुद्धाशुद्ध निश्चयो द्रव्यार्थिकस्य भेदौ।

अर्थ : शुद्ध और अशुद्ध निश्चय नय द्रव्यार्थिक नय के भेद हैं।

९. शंका : क्या अशुद्ध निश्चय नय व्यवहार है?

समाधान : हाँ, देखें स.सा./ता.वृ. ५७/९७/१३

वस्तुतस्तु शुद्धनिश्चयनयापेक्षया पुनरशुद्ध निश्चयोऽपि व्यवहार एवेति भावार्थः।

अर्थ : वस्तुत: तो शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय भी व्यवहार ही है।

१०. शंका : उपर्युक्त वाक्य को किसी दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कीजिये?

समाधान : देखिये (स.सा./ ता.वृ. ६८/१०८/११)

अशुद्ध निश्चयस्तु वस्तुतो यद्यपि द्रव्य कर्मापेक्षयाभ्यन्तर रागादयश्चेतना इति मत्वा निश्चय संज्ञा लभते तथापि शुद्ध निश्चयनयापेक्षया व्यवहार एव। इति व्याख्यानं निश्चय व्यवहार नय विचार काले सर्वत्र ज्ञातव्यं।

अर्थ : द्रव्य कर्मों की अपेक्षा रागादिक अभ्यन्तर है और इसलिये चेतनात्मक है, ऐसा मानकर भले उन्हें निश्चय सज्ञा दे दी गई हो, परंतु शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा तो वह व्यवहार ही है। निश्चय, व्यवहार नय का विचार करते समय सर्वत्र यह व्याख्यान जानना चाहिये।

११. शंका : अशुद्ध नय को शुद्ध या निश्चय नय कह सकते हैं?

समाधान : नहीं, देखिये **प्रवचनसार ता.वृ. १८९/२५४/११**

परंपरया शुद्धात्मसाधकत्वादयमशुद्धनयोऽप्युपचारेण शुद्ध नयो भण्यते निश्चय नयो न।

अर्थ : परम्परा से शुद्धात्म का साधक होने के कारण यह अशुद्ध नय उपचार से शुद्ध नय कहा गया है परंतु निश्चय नय नहीं कहा गया है।

१२. शंका : क्या एकदेश शुद्ध निश्चय नय भी होता है इसे सोदाहरण समझाने की कृपा करें?

समाधान : द्र. सं. टी. गा. ४८ के पृ. २०५ पर इस प्रकार कहा है –

रागद्वेषादयः किं कर्म जनिताः किं जीव जनिता इति। तत्रोत्तरं-स्त्री पुरुष संयोगोत्पन्न पुत्र इव सुधाहरिद्रा संयोगोत्पन्न वर्ण विशेष इवोभय संयोग जनिता इति। पश्चान्नय विवक्षा वशेन विवक्षितैकदेशशुद्ध निश्चयेन कर्म जनिता भण्यन्ते।

अर्थ : प्रश्न :रागद्वेषादि भाव कर्म से उत्पन्न होते है या जीव से?

उत्तर : स्त्री-पुरुष इन दोनों के संयोग से उत्पन्न हुये पुत्र के समान और चूना तथा हल्दी इन दोनों के मेल से उत्पन्न हुये लाल रंग के समान ये रागद्वेषादि कषाय, जीव और कर्म इन दोंनो के संयोग से उत्पन्न होते हैं।

जब नय की विवक्षा होती है तो विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चय नय से ये कषाय कर्म से उत्पन्न हुये कहे जाते है। (अशुद्ध निश्चय नय से)जीव जनित कहे जाते है। कहा भी है -

अशुद्ध निश्चयनयेन सकल मोह रागद्वेषादि भाव कर्मणां कर्ता भोक्ता च (नि.सा./ता.वृ. / १८)

अर्थ : अशुद्ध निश्चय नय से सकल मोह, रागद्वेषादि रुप भाव कर्मों का कर्ता है तथा उनके फल स्वरुप उत्पन्न हर्ष-विषादादि रुप सुख-दुःख का भोक्ता है। और साक्षात शुद्ध निश्चय नय से ये है ही नहीं, तब किसके कहें?

अथता **द्रव्य संग्रह टी. गा. ५५** मे कहा गया है कि -

निश्चय शब्देन तु प्राथमिकापेक्षया व्यवहार रत्नत्रयानुकूल निश्चयो ग्राह्यः। निष्पन्न योग निश्चल पुरुषापेक्षया व्यवहार रत्नत्रयानुकूल निश्चयोग्राह्यः। निश्चय निष्पन्न योग पुरुषापेक्षया तु शुद्धोपयोग लक्षण विवक्षितैकदेश शुद्धनिश्चयो ग्राह्यः विशेष निश्चयः पुनरग्रे वक्ष्यमाणस्तिष्ठतीति सूत्रार्थः।

अर्थ : निश्चय शब्द से - अभ्यास करने वाले प्राथमिक, जघन्य पुरुष की अपेक्षा तो व्यवहार रत्नत्रय के अनुकूल निश्चय ग्रहण करना चाहिये। निष्पन्न योग में निश्चल पुरुष की अपेक्षा अर्थात् मध्यम धर्मध्यान की अपेक्षा व्यवहार रत्नत्रय के अनुकूल निश्चय करना चाहिये। निष्पन्न योग अर्थात् उत्कृष्ट धर्मध्यानी पुरुष की अपेक्षा शुद्धोपयोग लक्षण रुप विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चय नय ग्रहण करना चाहिये। विशेष निश्चय अर्थात् शुद्ध निश्चय आगे कहते हैं - मन, वचन, काय से कुछ भी व्यापार मत करो, केवल आत्मा में ही रत हो जाओ।

१३. शंका : क्या शुद्ध निश्चय नय का विषय वचनातीत है?

समाधान : हाँ, देखो (**प.पं.वि. अ. १ छंद १५७**)

शुद्धं वागति वर्ति तत्त्व मितर द्वाच्यं च तद्वाचकं ।

अर्थ : शुद्ध तत्त्व वचन के अगोचर है, इसके विपरीत अशुद्ध तत्त्व वचनों के गोचर कहा गया है।

१४. शंका : क्या निश्चय सम्यग्दृष्टि शुद्ध नय का ही आश्रय लेते हैं?

समाधान : हाँ, देखे **स.सा./आ. ११, ४१४**

ये भूतार्थमाश्रयन्ति त एव सम्यक् पश्यंतः सम्यग्दृष्टयो भवन्ति न पुनरन्ये, कतक स्थानीयत्वात् शुद्धनयस्य।

अर्थ : यहाँ कतक फल के समान शुद्ध नय है जो पर संयोग को दूर करता है, इसलिये जो शुद्ध नय का आश्रय लेते हैं वे ही सम्यक् अवलोकन करने से सम्यग्दृष्टि हैं, अन्य नहीं। अथवा **प.पं.वि. अ. १ छंद ८०** में भी कहा है कि-

निरूप्य तत्त्वं स्थिरतामुपागता,मतिः सतां शुद्धनयावलम्बिनी।
अखण्डमेकं विशदं चिदात्मकं, निरंतरं पश्यति तत्परं महः ॥

अर्थ : शुद्ध नय का आश्रय लेने वाली साधुजनों की बुद्धि, तत्त्व का निरूपण करके स्थिरता को प्राप्त होती हुई निरंतर अखण्ड, एक निर्मल, एक चेतन स्वरूप उस उत्कृष्ट ज्योति का ही अवलोकन करती है।

१५. शंका : शुद्धनयावलंबन से ही क्या आत्मलाभ होता है?

समाधान : हाँ, **प्र.सा.ता.वृ. १९१/२५६/१८** मे कहा है कि शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभ एव -

अर्थ : शुद्धनय के आलंबन से शुद्ध आत्मलाभ अवश्य होता है।

भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो॥ (स.सा. ११)

अर्थ : जो जीव भूतार्थ का आश्रय लेता है वह निश्चय नय से सम्यग्दृष्टि होता है।

अत्रैवा विश्रान्तान्तर्दृष्टिर्भवत्यात्मा। (न.च.श्रु. ३२)

अर्थ : इस नय का सहारा लेने से ही आत्मा अन्तर्दृष्टि होता है।

१६. **शंका : कौन सा नय आराधनीय है?**

समाधान : तस्माद् द्वावपि नाराध्यावराध्यः पारमार्थिकः। (न.च.श्रु. ६७)

अर्थ : इसलिये निश्चय व व्यवहार दोनों ही नय आराध्य नहीं हैं। एक केवल पारमार्थिक नय ही आराध्य है।

णिच्चयणयासिदापुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं। (२७२ स.सा.)

अर्थ : निश्चय नय के आश्रित मुनि निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

१७. **शंका : क्या अशुद्ध नय से अशुद्धात्मा का ही लाभ होता है?**

समाधान : हाँ, देखो **प्र.सा.** / ता.वृ.गा. ।७। में कहा है कि -

अतो अवधार्यते अशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव।

अर्थ : इससे जाना जाता है कि अशुद्ध नय से अशुद्धात्मा का लाभ होता है।

(इस विषय को शंका समाधान नं. ३३३ से ३३६ तक में देखें)

१८. **शंका : क्या शुद्ध नय के आश्रय से ही शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है?**

समाधान : हाँ, **देखो प्र.सा./त. प्र. १९१**

निश्चयनयापहस्तितमोह... आत्मानमेवात्मत्वेनोपादाय परद्रव्य व्यावृत्तत्वादात्मन्येकस्मिन्नग्रे चिंतां निरूणद्धि खलु... निरोध समये शुद्धात्मा स्यात्। अतोऽवधार्यते शुद्धनयादेव शुद्धात्म लाभः।

अर्थ : निश्चय नय के द्वारा जिसने मोह को दूर किया है वह पुरुष आत्मा को ही आत्मरूप से ग्रहण करता है और परद्रव्य से भिन्नत्व के कारण आत्मा रूप एक अग्र में ही चिंता को रोकता है (निर्विकल्प समाधि को प्राप्त होता है) उस एकाग्र चिन्ता निरोध के समय वास्तव में वह शुद्धात्मा होता है। इससे निश्चित होता है कि शुद्ध निश्चय नय से ही शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है।

१९. **शंका : कुछ लोग अंतरंग सम्यग्दर्शन को निश्चय तथा उसके बाह्य प्रशमादि को व्यवहार कहते हैं ये बात क्या सही है?**

समाधान : यह कथन आगमिक दृष्टि से ही माना जा सकता है। अध्यात्मिक दृष्टि से नहीं, क्योंकि अध्यात्म ग्रथ इसे व्यवहार ही कहते है (**देखिये पृ. १० शंका १८**)

क्योंकि जिन प्रशमादि भावो को शास्त्रो मे व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा गया है वह तभी जबकि अंतर आत्मा से हो / अतर मन से हो / अतर हृदय से हो, तभी वे व्यवहार हैं अन्यथा वे व्यवहाराभास हैं। व्यवहार भी नहीं है। तो फिर वे अंतरग भाव से उत्पन्न प्रशमादि निश्चय सम्यग्दर्शन कैसे हो सकते हैं ?

२०. शंका : तो क्या प्रशमादि भाव अंतरंग में होते हैं बहिरंग में नहीं?

समाधान : अंतरग से उत्पन्न हुए प्रशमादि भाव ही सच्चे प्रशमादि भाव हैं और वे ही व्यवहार सम्यग्दर्शन के गमक है।

२१. शंका : तो क्या प्रशमादि भाव मिथ्यादृष्टि को नहीं हो सकते हैं?

समाधान : हो सकते हैं किंतु वे मोक्षमार्ग हेतुक नहीं हो सकते, अत: मोक्षमार्ग मे वे बाह्य हैं।

२२. शंका : तो क्या वे मात्र बाह्य में ही होते हैं, अंतरमन से आत्मा या हृदय में नहीं होते और यदि नहीं होते तो फिर मिथ्यादृष्टि नौ ग्रैवेयक तक कैसे जाता है? घानी में पेले जाने पर भी उनमें बाह्य उपशमादि भाव दिखता है।

समाधान : मिथ्यादृष्टि को भी प्रशमादि भाव संभव हैं और वे उसे नौ ग्रैवेयक तक पहुँचा सकते है किंतु उसके वे भाव सम्यक्त्व से रहित होते हैं अत: ससार के ही कारण है, मोक्ष के नहीं।

२३. शंका : अब समझ मे आया कि उसके प्रशमादि भाव सम्यक्त्व से रहित होने के कारण मोक्ष के कारण नहीं होते। परंतु अंतरंग और बहिरंग में उसे हो सकते हैं किंतु यदि सम्यक्त्व के साथ है तो वे मोक्ष के कारण हैं, इसे एक बार फिर मे समझा दीजिए?

समाधान : ध्यान दीजिए, अतरंग सम्यग्दर्शन के साथ जो अतरंग-बहिरंग प्रशमादि भाव है वे ही व्यवहार सम्यग्दर्शन हैं। प्रशमादि सहित सम्यग्दर्शन व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन से रहित प्रशमादि भाव तथा प्रशमादि भाव से रहित सम्यग्दर्शन व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं है।

अकेला अंतरंग सम्यदर्शन या अंतरंग प्रशमादि भाव सम्यग्दर्शन नहीं है। अपितु सम्यग्दर्शन व प्रशमादि की युगपत्ता ही व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

२४. शंका : अंतरंग सम्यग्दर्शन के साथ अंतरंग-बहिरंग प्रशमादि भाव होते ही हैं क्या?

समाधान : सम्यग्दृष्टि जीव को सराग अवस्था में नियम से अंतरंग में प्रशमादि भाव पाये ही जाते हैं, बहिरंग में भजनीय है। दिख भी सकते है और नहीं, क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि चतुर्थगुणस्थानवर्ती भरतादि युद्ध भी करते हैं तो भी उनमें उस क्षण में प्रशमादि भाव रहते ही हैं। तथा वीतराग दशा में मुनिराजों को तत्क्षण के प्रशमादि भाव नहीं दिखते हैं।

२५. शंका : तो फिर सात प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम नियम से निश्चय सम्यग्दर्शन हैं?

समाधान : यह भी गलत है क्योंकि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय या क्षयोपशम से नियम से सम्यग्दर्शन होता है किंतु वह निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं है उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहना भी सबसे बड़ी भूल है क्योंकि यदि निश्चय सम्यग्दृष्टि मानोंगे तो फिर निश्चय सम्यग्दर्शन स्थाई मानना पड़ेगा और ऐसा माना तो फिर शुभाशुभ कार्य करते वक्त भी संकल्प-विकल्प में भी तथा सराग दशा में भी वह निश्चय सम्यग्दृष्टि ही रहेगा। और यदि ऐसा रहा तो, या तो निश्चय या वीतराग सम्यग्दर्शन का अभाव मानना पडेगा। अथवा उसकी व्यवहार तथा सराग क्रियाओं को भी वीतराग मानना पड़ेगा अथवा दोनों को युगपत् मानना पड़ेगा जिससे सिद्धान्त का लोप हो जायेगा अर्थात् न तो वह वीतराग ही रहेगा और न सराग ही, अपितु मिश्र रूप हो जायेगा। और आगम में जहाँ वीतराग-सराग ऐसे दो भेद कहे हैं वहाँ तीसरा मिश्र भेद तो कहीं कहा भी नहीं गया है फिर उसे मानना आगम विरुद्ध ठहरेगा और आगम विरुद्ध मान्यता मिथ्यात्व कहलायेगी।
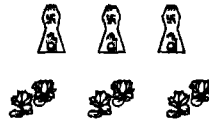
विधानं दुर्गतेद्वारां निधानं सर्व संपदाम्।

विधानं मोक्ष सौख्यानां पुण्यें सम्यक्त्वमाथते ॥ सु.स. ७१४ ॥

अर्थ : जो दुर्गति के द्वारो को बंद करने वाला है, समस्त सम्पदाओं का भण्डार है और मोक्ष संबंधी सुखों को करने वाला है ऐसा सम्यग्दर्शन बहुत भारी पुण्य से प्राप्त होता है।

२६. **शंका : व्यवहार नय किसे कहते हैं?**

समाधान : देखिये - **नय चक्र वृहद गा. २६२** में कहा है कि-

जो सिये भेदुवयारं धम्माणं कुणइ एगवत्थुस्स।

... सोववहारो भणियो ॥

अर्थ : एक अभेद वस्तु में जो धर्मों का अर्थात् गुण पर्यायों का भेद रूप उपचार करता है, वह व्यवहार नय कहलाता है।

अथवा **त. अनु. श्लो. २९** में कहा है कि -

व्यवहार नय भिन्न कर्तृकर्मादिगोचरः।

अर्थ : व्यवहार नय भिन्न कर्ता कर्मादि विषयक है।

२७. **शंका : व्यवहार नय क्या अपरमार्थ है?**

समाधान : हाँ, देखो **न. च. श्रु. गा. २९-३०** में कहा है कि -

योऽसौ भेदोपचार लक्षणोऽर्थः सोऽपरमार्थः। अभेदानुपचारस्यार्थस्या परमार्थत्वात् व्यवहारोऽपरमार्थ प्रतिपादकत्वाद भूतार्थः।

अर्थ : जो यह भेद और उपचार लक्षण वाला पदार्थ है सो अपरमार्थ है क्योंकि अभेद व अनुपचार रुप पदार्थ को ही परमार्थपना है। व्यवहार नय उस अपरमार्थ का प्रतिपादक होने से अभूतार्थ है।

२८. **शंका : व्यवहार नय का आश्रय किसे नहीं लेना चाहिये?**

समाधान : स.सा.आ. ख्या. गा. ११ में कहा है कि -

प्रत्यगात्मदर्शिभि व्यवहार नयो नानुसर्तव्यः।

अर्थ : कर्मो से भिन्न शुद्धात्मा को देखने वालो को व्यवहार नय अनुसरण करने योग्य नहीं हैं।

२९. **शंका : व्यवहार नय को ही कोई परमार्थ मान ले तो?**

समाधान : देखो **स. सा. आ. ख्या. ४१५**

ये व्यवहारमेव परमार्थ बुद्धया चेतयन्ते ते समयसार मेव न संचेतयन्ते।

अर्थ : जो व्यवहार को ही परमार्थ बुद्धि से अनुभव करते हैं। वे समयसार का ही अनुभव नहीं करते है।

३०. शंका : तो क्या व्यवहार नय सर्वथा असत्य है?

समाधान : इस प्रश्न का दृष्टान्तपूर्वक समाधान देते हुए **स.सा./ता.वृ.** ३५६-३६५ / ४४७/१५ में कहा है कि -

ननु सौगतोऽपि ब्रूते व्यवहारेण सर्वज्ञः, तस्य किमिति दूषणं दीयते भवद्भिरिति। तत्र परिहारमाह सौगतादिमते यथा निश्चयापेक्षा व्यवहारो मृषा, तथा व्यवहारेणापि व्यवहारो न सत्य इति, जैन मतेपुर्नव्यवहारनयो यद्यपि निश्चयापेक्षया मृषा तथापि व्यवहारेण सत्य इति। यदि पुनर्लौकव्यवहार रुपेणपि सत्यो न भवति तर्हि सर्वेऽपि लोक व्यवहारो मिथ्या भवति, तथा सत्यतिप्रसङ्गः एवमात्मा व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति पश्यति निश्चयेन पुनः स्वद्रव्यमेवेति।

अर्थ : प्रश्न - सौगत (बौद्ध) मत वाले भी सर्वज्ञपना व्यवहार से मानते हैं तब आप उनको दूषण क्यों देते हो? (क्योकि जैनमत में भी कहा कि केवली परपदार्थों को व्यवहार से जानते हैं।)

उत्तर : इसका परिहार करते हैं -

सौगत आदि मत मे जिस प्रकार निश्चय की अपेक्षा व्यवहार झूठा है, उसी प्रकार व्यवहार रुप से भी वह सत्य नहीं है परतु जैनमत में व्यवहार नय ये यद्यपि निश्चय की अपेक्षा मृषा (झूठा) है तथापि व्यवहार रुप से वह सत्य है। यदि लोकव्यवहार रुप से भी उसे सत्य न माना जाये तो सभी लोक व्यवहार मिथ्या हो जायेगा और ऐसा होने पर अतिप्रसंग दोष आयेगा। इसलिये केवली भगवान की आत्मा व्यवहार से परद्रव्य को जानता देखता है पर निश्चय नय से केवल स्वद्रव्य अर्थात् आत्म द्रव्य को ही जानता देखता है।

३१. शंका : तो क्या व्यवहार, व्यवहार नय से सत्य है?

समाधान : देखे स. सा. ता. वृ. गा. ११

व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थश्च देशितः कथितः न केवलं व्यवहारो देशितः शुद्ध निश्चय नयोऽपि।

अर्थ : व्यवहार नय अभूतार्थ है (असत्यार्थ है) तथा भूतार्थ (सत्यार्थ भी) है ऐसा कहा है और मात्र व्यवहार है नहीं कहा, किंतु शुद्ध निश्चय नय भी भूतार्थ व अभूतार्थ ऐसा दो प्रकार से कहा हैं।

३२. शंका : क्या निश्चय नय ही प्रयोजनवान् है व्यवहार नहीं?

समाधान : ऐसा नहीं कहना चाहिये, देखिये स.सा.ता.वृ.गा. १२ की प्रस्तावना में कहा है कि -

अत्र तु न केवलं भूतार्थो निश्चय नयो निर्विकल्प समाधिरतानां प्रयोजनवान भवति। किंतु निर्विकल्प समाधि रहितानां पुनः षोडश वर्णिका सुवर्ण लाभाभावे अधस्तन वर्णिका सुवर्ण लाभवत्केषाञ्चित प्राथमिकानां कदाचित सविकल्पावस्थायां मिथ्यात्व विषय कषाय दुर्ध्यान वञ्चानार्थंव्यवहार नयोऽपि प्रयोजनवान भवतीति।

अर्थ : यहाँ केवल भूतार्थ अर्थात् निश्चय नय निर्विकल्प समाधि में लीन योगियों को ही प्रयोजनवान नहीं है किंतु निर्विकल्प समाधि से रहित सोलहवें ताव से रहित इससे कम ताव वाले स्वर्णलाभ के समान कुछ प्राथमिकों को कदाचित् सविकल्प अवस्था में मिथ्यात्व, विषय - कषाय, दुर्ध्यान से बचने के लिये व्यवहार नय भी प्रयोजनवान होता है।

३३. शंका : अपरम भाव में स्थित प्राथमिक जन कौन हैं?

समाधान : देखिये स.सा. ता.वृ. १२/२६/६

व्यवहार देशितो व्यहार नयः पुनः अधःस्तन वर्णिक सुवर्ण लाभ वत्प्रयोजनवान भवति । केषां? ये पुरुषाः पुनः अशुद्धे असंयत सम्यग्दृष्टयपेक्षया श्रावकापेक्षया वा सराग सम्यग्दृष्टि लक्षणे शुभोपयोगे प्रमत्ताप्रमत्त संयतापेक्षया च भेदाभेद रत्नत्रय लक्षणे वा स्थिताः, कस्मिन् स्थिताः? जीव पदार्थे तेषामिंति भावार्थः ॥

अर्थ : व्यवहार के उपदेश से व्यवहार नय अधस्तन अर्थात् सोलह से पूर्ववर्ती ताव वाले स्वर्ण के समान होता है। किसका व्यवहार? जो पुरुष अशुद्ध अवस्था में स्थित असंयत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा, (व्रती) श्रावकों की अपेक्षा तथा सराग सम्यग्दृष्टि लक्षण से युक्त शुभोपयोग मे स्थित प्रमत्त और अप्रमत्त की अपेक्षा भेदरत्नत्रय लक्षण में स्थित है। किसमें? जीव पदार्थ में, उनको व्यवहार नय प्रयोजनवान है।

३४. शंका : क्या व्यवहार बिना केवल निश्चय से ही कार्यसिद्धि नहीं होती?

समाधान : इस प्रश्न के समाधान को **अन. ध १/१००/१०७** देखें

व्यवहार पराचीनो निश्चयं यश्चिकीर्षति।

वीजादिना बिना मूढः स सस्यानि सिसृक्षति ॥

अर्थ : जो व्यवहार से पराङ्मुख होकर केवल निश्चय से ही कार्य सिद्ध करना चाहता है, वह मनुष्य बीज, खेत, जल, खाद आदि के बिना ही धान्य उत्पन्न करना चाहता है।

३५. शंका : व्यवहार नय क्या किसी को किसी भी काल में प्रयोजनवान नहीं?

समाधान : नहीं, ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि **स.सा. आत्मख्याति टीका गाथा १२** में उक्त प्रश्न के समाधान मे देते है -

अथ च केषांचित्कदाचित्सोऽपि प्रयोजनवान् ये तु... अपरमं भावमनुभवन्ति तेषां... व्यवहार नयो... परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान, तीर्थ तीर्थफलयोरित्थमेव व्यवस्थितत्त्वात्। उक्तं च -

"जह जिणमयं पवज्जह ता मा व्यवहार णिच्छए मुयह।

एकेण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं ॥

अर्थ : व्यवहार नय भी किसी - किसी को किसी काल में प्रयोजनवान होता है। जो पुरुष अपरम भाव मे स्थित है अर्थात् ४ से ७ गुणस्थान तक के जीवों को जानने में आता हुआ उस समय प्रयोजनवान है, क्योंकि तीर्थ व तीर्थ के फल की ऐसी ही व्यवस्थिति है। अन्यत्र भी कहा है -

भव्य जीवों ! यदि तुम जिनमत को प्रवर्ताना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों नयों को मत छोड़ो, क्योंकि व्यवहार नय के बिना तो तीर्थ का नाश हो जायेगा और निश्चय नय के बिना तत्त्व का नाश हो जायेगा।

३६. शंका : तब तो परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिए फिर व्यवहार का क्यों?

समाधान : तर्हि परमार्थ एवैको वक्तव्य इति चेत?

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्ज भासं विणा उ गाहेउं।

तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसण मसक्कं ॥स.सा.॥८॥

प्रश्न : तब तो एक परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिए था। व्यवहार का उपदेश किस लिये दिया जाता है?

उत्तर : जैसे अनार्यजन को अनार्य भाषा के बिना किसी भी वस्तु का स्वरूप ग्रहण कराने के लिए कोई समर्थ नहीं है उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश देना अशक्य है।

अथवा

व्यवहारो हि व्यवहारिणां म्लेच्छ भाषेव म्लेच्छानां परमार्थ प्रतिपादकत्वा - दपरमार्थोऽपि तीर्थ प्रवृत्ति निमित्तं दर्शयितुं न्याय्य एव। तमन्तरेण तु शरीराज्जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनात् त्रसस्थावराणां भस्मन इव निःशङ्क मुपमर्दनेन हिंसाभावादभवत्येव बन्धस्याभावः। तथा रक्तद्विशिष्ट विमूढो जीवो बध्यमानो मोचनीय इति रागद्वेष विमोहेभ्यो जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनेन मोक्षोपायपरिग्रहणाभावात् भवत्येव मोक्षस्याभावः।

अर्थ : जैसे म्लेच्छों को म्लेच्छ भाषा, वस्तु का स्वरूप बतलाती है, उसी प्रकार व्यवहार नय, व्यवहारी जीवो को परमार्थ का कहने वाला है। इसलिये अपरमार्थभूत होने पर भी, धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति करने के लिए वह (व्यवहार नय) बतलाना न्यासंगत ही है। परन्तु यदि व्यवहार नय न बतलाया जाये तो, क्योंकि परमार्थ से जीव को शरीर से भिन्न बताया गया है इसलिये जैसे भस्म को मसल देने से हिंसा का अभाव है उसी प्रकार त्रस-स्थावर जीवों का निशंकतया मसल देने में भी हिसा का अभाव ठहरेगा और इस कारण बंध का ही अभाव सिद्ध होगा। उसी प्रकार रागी-द्वेषी-मोही जीव कर्म से बधंता है वह छुड़ाने योग्य है ऐसा कहा गया है। परमार्थ से राग-द्वेष-मोह से जीव को भिन्न दिखलाने पर मोक्ष के उपाय का उपदेश व्यर्थ हो जायेगा, तब मोक्ष का भी अभाव ठहरेगा इसलिये व्यवहार नय कहा गया है।

३७. शंका : क्या व्यवहार नय के आश्रय के बिना शुद्ध स्वरुप का आश्रय संभव है ?

समाधान : देखो **पद्मनंदि पंच विशंतिका गा. ११/११** में कहा है कि

मुख्योपचार विवृत्तिं व्यवहारोपायतो यतः सन्तः।

ज्ञात्वा श्रायन्ति शुद्धं तत्त्वमितिः व्यवहृतिः पूज्या॥

अर्थ : चूँकि सज्जन पुरुष व्यवहार नय के आश्रय से ही मुख्य और उपचार भूत कथन को जानकर शुद्ध स्वरूप का आश्रय लेते हैं, अतएव व्यवहार नय पूज्य है।

३८. शंका : व्यवहार नय से परद्रव्य को अपना कहने से अज्ञानी कैसे कहा जा सकता है?

समाधान : देखें स.सा.त. वृ. गा. ३२४ - ३३७/४१४

ज्ञानी भूत्वा व्यवहारेण परद्रव्य मात्मीयं वदन सन कथमज्ञानी भवति इति चेत्। व्यवहारो हि म्लेच्छानां म्लेच्छ भाषैव प्राथमिक जनसंबोधनार्थ काल एवानुसर्तव्यः। प्राथमिक जन प्रतिबोधन कालं विहाय कतक फल वदात्म शुद्धिः कारकात् शुद्धनयाच्च्युतो भूत्वा यदि परद्रव्य मात्मीयं करोतति तदा मिथ्यादृष्टि र्भवति।

अर्थ : प्रश्न - ज्ञानी होकर व्यवहार नय से परद्रव्य को अपना कहने से वह अज्ञानी कैसे हो जाता है?

उत्तर : म्लेच्छों को समझाने के लिये म्लेच्छ भाषा की भाति प्राथमिक जनों को समझाने के समय ही व्यवहार नय अनुशरण करने योग्य है प्राथमिक जनो के संबोधन काल को छोडकर अन्य समयो में नहीं, अर्थात् कतक फल की भांति जो आत्मा की शुद्धि करने वाला है ऐसे शुद्ध नय से च्युत होकर यदि परद्रव्य को अपना कहता है तब मिथ्यादृष्टि हो जाता है। अथवा

पुरुषार्थ सिद्धियुपाय श्लोक ६-७ में कहा है कि -

अबुधस्य बोधनार्थ मुनीश्वरा देशयन्त्य भूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवल मवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥
माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीत सिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा, निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य ॥

अर्थ : अज्ञानी को समझाने के लिये ही मुनि जन अभूतार्थ (व्यवहार) नय का उपदेश देते हैं। जो केवल व्यवहार को ही सत्य मानते हैं उनके लिये उपदेश नही है जो सच्चे को नहीं जानते हैं। उनको यदि विलाव जैसा सिद्ध होता है यह कहा जाये तो विलाव को ही सिंह मान बैठेंगे। इसी प्रकार जो निश्चय को नहीं जानते उनको यदि व्यवहार का उपदेश दिया जाये तो वे उसी को निश्चय मान लेंगे।

३९. शंका : व्यवहार नय क्या पराश्रित है?

समाधान : हाँ, देखो **स.सा. आ.ख्या. गा. २७२**

पराश्रित व्यवहार :

अर्थ : परपदार्थ के आश्रित कथन करने वाला होने से व्यवहार नय पराश्रित है।

४०. शंका : व्यवहार नय क्या पर्यायार्थिक भी है?

समाधान : हाँ, देखिये **गो.जी. २७२/१०१६**

ववहारोय वियप्पो भेदो तह पज्जओत्ति एयट्ठो।

अर्थ : व्यवहार, विकल्प, भेद व पर्याय ये एकार्थवाची शब्द हैं।

४१. शंका : व्यवहार नय को स्पष्ट समझाते हुए उसके भेद भी समझाइए?

समाधान : देखें **पं. का. गाथा ४७**

णाणं धणं च कुव्वदि, धणिणं अह णाणं च दुविधेहिं।

भण्णंति तद पुधत्तं, एयत्तं चावि तच्चण्हू ॥

अर्थ : धन पुरुष को धनवान करता है, और ज्ञान आत्मा को ज्ञानी करता है इसी प्रकार तत्त्वज्ञ पुरुष उस व्यवहार को एकत्व और पृथकत्व के रूप से दो प्रकार का कहते हैं।

अथवा **न.च. श्रुत पृ. ३५** पर कहा है कि –

व्यवहारो द्विविधः सद्भूत व्यवहारो असद्भूत व्यवहारश्च तत्रैक वस्तु विषयः सद्भूत व्यवहारः। भिन्न वस्तु विषयोऽसद्भूत व्यवहारः।

अर्थ : व्यवहार दो प्रकार का हैं – सद्भूत व्यवहार और असद्भूत व्यवहार नय। जहाँ सद्भूत व्यवहार नय एक वस्तु विषयक होता है और असद्भूत व्यवहार भिन्न वस्तु विषयक होता है।

४२. शंका : उपनय किसे कहते हैं तथा उसके कितने भेद हैं?

समाधान : देखे आ.प.सू. ४३-४४

नयानां समीपः उपनयः। सद्भूत व्यवहारः असद्भूत व्यवहारः उपचरितासद्भूत व्यवहारश्चेत्युपनयस्त्रेधा।

अर्थ : जो नयों के समीप हो अर्थात् नयों की भांति ही ज्ञाता के अभिप्राय स्वरूप हों, उन्हें उपनय कहते है और वह तीन प्रकार का हैं - १ सद्भूत २ असद्भूत ३ उपचरित असद्भूत

४३. शंका : सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं? दृष्टांत द्वारा समझाइए।

समाधान : देखें न. च. वृ. गा. २२०

गुण गुणी पज्जय दव्वे कारक सब्भावदो य दव्वेसु।
तो णाऊणं भेयं कुणयं सब्भूय सद्धियरो ॥

अर्थ : गुण व गुणी में अथवा पर्याय व द्रव्य मे कर्ता, कर्म, करण व संबध आदि कारकों का कथंचित् सद्भाव होता है उसे जानकर जो द्रव्यों में भेद करता है वह सद्भूत व्यवहार नय है।

४४. शंका : सद्भूत व्यवहार नय के कितने व कौन - कौन से भेद हैं?

समाधान : आ.प. सू. २२३ मे कहा है कि -

तत्र सद्भूत व्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरित भेदात्।

अर्थ : सद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार का हैं १ उपचरित २. अनुपचरित।

४५. शंका : उपचरित सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं? समझाइए।

समाधान : देखे आ.प. सू. २२४

तत्र सोपाधिगुणगुणिनोर्भेद विषय : उपचरित सद्भूत व्यवहारो यथा - जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः।

अर्थ : उपाधिसहित गुण व गुणी मे भेद को विषय करने वाला उपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। जैसे - मतिज्ञानादि जीव के गुण हैं।

४६. शंका : क्या उपचरित सद्भूत व्यवहार नय के भी भेद हैं ? उदाहरण सहित समझाइए।

समाधान : नहीं, उपचरित सद्भूत व्यवहार नय के भेद नहीं हैं अपितु इसे ही अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नाम से जाना जाता है। यथा - अशुद्ध उपचरित सद्भूत व्यवहार नय को देखें - **द्र. सं. टी. गाथा ६/१८/६**

छद्मस्थज्ञानदर्शन परिपूर्णापेक्षया पुनरशुद्ध शब्द वाच्य उपचरिता सद्भूत व्यवहारः।

अर्थ : छद्मस्थ जीव के ज्ञान - दर्शन की अपेक्षा अशुद्ध सद्भूत शब्द से वाच्य उपचरित सद्भूत व्यवहार है।

अथवा देखें **नि.सा./ता. वृ. गा. ९**

अशुद्ध सद्भूत व्यवहारेण मतिज्ञानादि विभाव गुणानामाधारभूतत्त्वाद शुद्ध जीवः।

अर्थ : अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय से मतिज्ञानादि विभाव गुणों का आधार होने के कारण अशुद्ध जीव है।

अथवा **आ. प. सू.** ८३ देखें -

अशुद्ध सद्भूत व्यवहारो यथाऽशुद्धगुणाऽशुद्धगुणिनोरशुद्धपर्याया शुद्धपर्यायिणोर्भेद कथनम्।

अर्थ : अशुद्ध गुण व अशुद्ध गुणी में अथवा अशुद्ध पर्याय व अशुद्ध पर्यायी में भेद का कथन करना अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है।

४७. शंका : अनुपचरित सद्भूत तथा शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय एक ही है?

समाधान : हाँ, ये एक ही है। शुद्ध कहो या अनुपचरित, दोनों का अर्थ एक ही है।

४८. शंका : अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

समाधान : देखें **आ.प.सू. २२५**

निरूपाधिगुणगुणिनोर्भेद विषयोऽनुपचरित सद्भूत व्यवहारो यथा - जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः।

अर्थ : निरूपाधि गुण व गुणी में भेद को विषय करने वाला अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। जैसे - केवलज्ञानादि जीव के गुण हैं।

अथवा **आ.प.सू.** ८२ देखे -

शुद्ध सद्भूत व्यवहारो यथा शुद्ध गुण गुणिनो शुद्ध पर्याय पर्यायिणो भेद कथनम्।

अर्थ : शुद्ध गुण व शुद्ध गुणी में अथवा शुद्ध पर्याय व शुद्ध पर्यायी में भेद का कथन करना शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है।

अथवा देखे - **नि. सा. / ता.वृ. गा. ९**

शुद्ध सद्भूत व्यवहारेण केवलज्ञानादि शुद्धगुणानामाधारभूतत्त्वात्कार्य शुद्ध जीवः।

अर्थ : शुद्ध सद्भूत व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का आधार होने के कारण 'कार्य शुद्ध' जीव है।

अथवा देखे **द्र.सं.टी.गा.** ६/१८/५

केवलज्ञानदर्शनं प्रतिशुद्ध सद्भूत शब्द वाच्योऽनुपचरित सद्भूत व्यवहारः।

अर्थ : यहाँ जीव का लक्षण कहते समय केवलज्ञान व केवलदर्शन के प्रति शुद्ध सद्भूत से वाच्य अनुपचरित सद्भूत व्यवहार है।

४९. **शंका : क्या असद्भूत व्यवहार नय तथा अशुद्ध नय एक ही है?**

समाधान : हाँ, एक ही है।

५०. **शंका : असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?**

समाधान : देखें **आ.प.सू.** २२२

भिन्न वस्तु विषयोऽसद्भूत व्यवहारः।

अर्थ : भिन्न वस्तु को विषय करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है।

५१. **शंका : असद्भूत व्यवहार नय को किसी दृष्टांत द्वारा स्पष्ट कीजिए?**

समाधान : नय च. वृ गा. ११३, ३२० मे कहा है कि -

मण वयण काय इंदिय, आणप्पाणं च जं जीवे।
तमसब्भयो भणदि हु ववहारो लोय मज्झम्मि ॥
णेयं खलु जत्थ णाणं सद्ध्येयं जं दंसणं भणियं।
चरियं खलु चारित्तं, णायव्वं तं असब्भूवं ॥

अर्थ : मन, वचन, काय, इन्द्रिय, आन प्राण और आयु ये जो दश प्राण जीव के हैं, ऐसा असद्भूत व्यवहार नय कहता है । ज्ञेय को ज्ञान का कहना - जैसे घर ज्ञान, श्रद्धेय को दर्शन कहना जैसे - देव - शास्त्र - गुरु की श्रद्धा सम्यग्दर्शन है।

आचरण करने योग्य को चारित्र कहते हैं। जैसे - हिंसा आदि का त्याग चारित्र है यह सब कथन असद्भूत व्यवहार नय है।

अथवा - **आ. प. सू. १६०, १६४, १७२, १७६**

असद्भूत व्यवहारेण कर्म नोकर्मणोरपि चेतन स्वभावः .. जीवस्याप्य-सद्भूत व्यवहारेण मूर्त स्वभावः... असद्भूत व्यवहारेणाप्युपचारेणा मूर्तत्वं... असद्भूत व्यवहारेण उपचरित स्वभावः।

अर्थ : असद्भूत व्यवहार से कर्म, नोकर्म चेतन स्वभावी हैं। जीव का भी मूर्त स्वभाव है और पुद्गल स्वभाव अमूर्तत्व उपचरित है।

५२. शंका : असद्भूत व्यवहार नय के कितने भेद हैं?

समाधान : देखें आ. प. २२६

असद्भूत व्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात्।

अर्थ : असद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार का है -

उपचरित असद्भूत और अनुपचरित असद्भूत।

५३. शंका : अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

समाधान : संश्लेष-सहित-वस्तु सम्बन्ध-विषयोऽनुपचरितासद्भूत - व्यवहारो यथा जीवस्य शरीरमिति। (आ.प. २२८)

अर्थ : सश्लेष सहित वस्तुओं के संबंध को विषय करने वाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे - जीव का शरीर है, ऐसा कहना।

५४. शंका : किसी दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट समझाइए?

समाधान : नि. सा. / ता. वृ. १८ में कहा है कि -

आसन्नगतानुपचरितासद्भूत व्यवहार नयाद् द्रव्य कर्मणां कर्ता तत्फलरूपणां सुखदुखानां भोक्ता च... अनुपचरितासद्भूत व्यवहारेण नोकर्मणां कर्ता।

अर्थ : आत्मा निकटवर्ती अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से द्रव्य कर्मों का कर्ता और उसके फलस्वरूप सुख - दु:ख का भोक्ता है तथा नोकर्म अर्थात् शरीर का भी कर्ता है।

अथवा

(१) **पं. का. ता. वृ. २७/६०/१५**

अनुपचरित असद्भूत व्यवहारेण द्रव्य प्राणैश्च यथा संभवं जीवति जीविष्यति जीवित पूर्वश्चेति जीवो।

अर्थ : अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से यथासंभव द्रव्य प्राणों के द्वारा जीता है, जीवेगा और पहले जीता था इसलिए आत्मा जीव कहलाता है।

(२) **अनुपचरितासद्भूत व्यवहारान्मूर्तो - द्र. सं. टी. ७/२०/१**

अर्थ : अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से जीव मूर्त है।

(३) **अनुपचरितासद्भूत व्यवहार संबंध: द्रव्यकर्म नोकर्म रहितम्। प.प्र.टी. १/१/६/८**

अर्थ : अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से जीव, द्रव्यकर्म व नोकर्म से रहित है।

५५. शंका : उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

समाधान : देखें आ.प. २२७

संश्लेष रहित वस्तु सम्बंध विषय: उपचरितासद्भूत व्यवहारो यथा - देवदत्तस्य धनमिति।

अर्थ : संश्लेष रहित वस्तुओं के सम्बंध को विषय करने वाला उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे - देवदत्त का धन, ऐसा कहना।

५६. शंका : क्या उपचरित असद्भूत व्यवहार नय को उपचार असद्भूत व्यवहार नय कह सकते हैं?

समाधान : हाँ, देखो आ. प. सू. २०८

असद्भूत व्यवहारो एवोपचारः। उपचारादप्युपचारं यः करोति स उपचरितासद्भूत व्यवहारः।

अर्थ : असद्भूत व्यवहार ही उपचार है। उपचार का भी जो उपचार करता है वह उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

५७. शंका : किसी दृष्टान्त के द्वारा इसे समझाइए?

समाधान : (१) नि.सा./ता.वृ.गा. ८ में इसे इस प्रकार से समझाया गया है कि –

उपचरितासद्भूत व्यवहारेण घट पट शकटादीनां कर्ता।

अर्थ : उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से आत्मा घट, पट, रथ आदि का कर्ता है।

(२) द्र. सं. टी. गा. १९/५७/१०

उपचरितासद्भूत व्यवहारेण मोक्षशिलायां तिष्ठन्तीति भण्यते।

अर्थ : उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से सिद्ध जीव सिद्ध शिला पर तिष्ठते हैं।

(३) प्र.सा. / ता.वृ.गा. २७५

उपचरितासद्भूत व्यवहार नयेन काष्ठासनाद्युपविष्ट देवदत्तवत समवशरण स्थित वीतराग सर्वज्ञवद्वा विवक्षितैक ग्रामग्रहादि स्थितम्।

अर्थ : उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से यह आत्मा काष्ठ आसन पर बैठे हुए देवदत्त की भांति, अथवा समवशरण में स्थित वीतराग सर्वज्ञ की भांति विवक्षित किसी एक ग्राम या घर आदि में स्थित है।

५८. **शंका : द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?**

समाधान :

(१) देखो स. सा. आ. ख्या. गा. १३

द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्यं मुख्यतयानुभवन्यतीति द्रव्यार्थिकः।

अर्थ : द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु में जो द्रव्य को मुख्य रूप से अनुभव करावे सो द्रव्यार्थिक नय है।

(२) **पज्जय गउणं किच्चा दव्वंपि य जो हु गिहणए लोए सो दव्वत्थिय भणिओ।....॥** न.च.वृ. १९०

अर्थ : पर्याय को गौण करके जो इस लोक में द्रव्य को ग्रहण करता है, उसे द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

५९. **शंका : इसे और भी स्पष्ट कीजिए?**

समाधान : देखो प्र.सा. / त. प्र. ११४ मे इस प्रकार समझाया है -

पर्यायार्थिकमेकान्तनिमीलितं विधाय केवलोन्मीलितेन द्रव्यार्थिकेन यदावलोक्यते तदा नारक तिर्यङ्मनुष्य देव सिद्धत्व पर्यायात्मकेषु विशेषेषु व्यवस्थितं जीव सामान्यमेकमवलोकयतामनवलोकित विशेषाणां तत्सर्वं जीव द्रव्यमिति प्रतिभाति।

अर्थ : पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बंद करके जब मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है तब नारकत्व, तिर्यकत्व, मनुष्यत्व, देवत्व और सिद्धत्व पर्याय स्वरूप विशेषों मे रहने वाले एक जीव सामान्य को देखने वाले और विशेषो को न देखने वाले जीवो को "यह सब जीव द्रव्य है" ऐसा भासित होता है।

६०. **शंका : द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद हैं?**

समाधान : देखे आ. प. २०३

शुद्धाशुद्ध निश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ।

अर्थ : शुद्ध निश्चय व अशुद्ध निश्चय दोनों द्रव्यार्थिक नय के भेद हैं।

६१. शंका : शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

समाधान : देखें **आ.प. १८५**

शुद्ध द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्ध द्रव्यार्थिक :।

अर्थ : शुद्ध द्रव्य ही है अर्थ और प्रयोजन जिसका सो शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

६२. शंका : शुद्ध तत्त्व क्या वचन के अगोचर है?

समाधान : हाँ, देखों प.पं. वि. १/१५७ में कहा है कि -

शुद्धं वागति वर्तित तत्त्वं

अर्थ : शुद्ध तत्त्व वचन के अगोचर है।

६३. शंका : शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषय को स्पष्ट कीजिए?

समाधान : शुद्ध द्रव्यार्थिक नय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्रधानता से वस्तु को विषय करता है यथा -

द्रव्यापेक्षा : जो पस्सदि अप्पाणं अबद्ध पुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्ध णयं वियाणाहि ॥(स.सा. १४)

अर्थ : जो नय आत्मा को बध रहित और पर के स्पर्श से रहित, अन्यत्व रहित, चलाचलता रहित, विशेष रहित, अन्य के संयोग से रहित ऐसे पाँच भाव रूप अवलोकन करता है उसे हे शिष्य ! तू शुद्ध नय जान।

क्षेत्रापेक्षा : शुद्ध निश्चयनयेन स्वदेहा भिन्ने स्वात्मनि वसति यः तमात्मानं मन्यस्व (प.प्र टी. २)

अर्थ : शुद्ध निश्चय नय अर्थात् अभेद नय से अपनी देह से भिन्न रहता हुआ वह निजात्मा मे वसता है।

कालापेक्षा : शुद्ध द्रव्यार्थिक नयेन नर नारकादि विभाव परिणामोत्पत्ति विनाश रहितम्। (पं.का.ता.वृ. ११/२७/१९)

अर्थ : शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से नर नारकादि विभाव परिणामों की उत्पत्ति तथा विनाश से रहित है।

भावापेक्षा : (१) शुद्ध द्रव्यार्थिकेन शुद्ध स्वभावः ।(आ.प. १७४)

अर्थ : शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से शुद्ध स्वभाव है।

(२) शुद्ध नयेन केवल मृण्मात्रवन्निरूपाधि स्वभावम्।

अर्थ : शुद्ध नय से आत्मा केवल मिट्टी मात्र की भांति शुद्ध (निरूपाधि) स्वभाव वाला है।

६४. शंका : अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते है ?

समाधान : (१) आ.प.सू. १८६ देखें

अशुद्ध द्रव्य मेवार्थः प्रयोजन मस्येत्य शुद्ध द्रव्यार्थिकः।

अर्थ : अशुद्ध द्रव्य ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका, सो अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

६५. शंका : क्या व्यवहार नय अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ?

समाधान : हाँ, देखें **श्लो वा. २/१/७/२८/५८५/१**

व्यवहार नयोऽशुद्ध द्रव्यार्थिकः।

अर्थ : व्यवहार नय अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

ध.पु. १/४/१/४५/१७१/३

पर्याय कलङ्कितया अशुद्ध द्रव्यार्थिकः व्यवहार नयः।

अर्थ : व्यवहार नय पर्याय (भेद) रुप कलक से युक्त होने से अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

६६. शंका : उपर्युक्त वाक्य को स्पष्ट कीजिये ?

समाधान : देखो **प्र.सा. परिशिष्ट नय न. ४६**

अशुद्ध नयेन घट शराब विशिष्ट मृण्मात्रवत्सोपाधि स्वभावम्।

अर्थ : अशुद्ध नय से आत्मा घट, शराब आदि विशिष्ट (अर्थात् पर्यायकृत भेदों से विशिष्ट) मिट्टी मात्र की भाति रागद्वेष सोपाधि स्वभाव वाला है।

६७. शंका : अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय भी क्या वचनों के अगोचर है ?

समाधान : नहीं, देखें **प.पं. वि. १/१७/२७**

इतर वाच्यं च तद्वाचकं... प्रभेद जनकं तद्धेतरत्कल्पितम्।

अर्थ : अशुद्ध तत्त्व वचन गोचर है उसका वाचक तथा भेद को प्रकट करने वाला अशुद्ध नय है।

६८. शंका : क्या द्रव्यार्थिक नय के और भी भेद हैं ?

समाधान : हाँ है, देखें **आ. प. सू. ४६**

द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः ।

अर्थ : द्रव्यार्थिक नय के दस भेद हैं।

६९. शंका : द्रव्यार्थिक नय के दस भेद कौन - कौन से हैं उदाहरण सहित समझाइये ?

समाधान : आ. प. सू. ४७ में कहा है कि -

(१) कर्मोपाधि निरपेक्षः शुद्ध द्रव्यार्थिको यथा संसारी जीवो सिद्ध सदृक शुद्धात्मा। अथवा मिथ्यात्वादि गुणस्थाने सिद्धत्वं वदति स्फुटं।

कर्मभि निरपेक्षो यः शुद्ध द्रव्यार्थिको हि सः ॥१॥ (न.च.श्रुत पृ. ३)

अर्थ : मिथ्यात्वादि गुणस्थान मे अर्थात् अशुद्ध भावों में स्थित जीव को जो सिद्धत्व कहता है वह कर्म निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

अथवा **कर्मोपाधि निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नयापेक्षया हि एभिर्नो कर्मभि द्रव्य कर्मभिश्च निर्मुक्तम्।**

अर्थ : कर्मोपाधि निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध निश्चय रुप द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा आत्मा इन द्रव्य व भाव कर्मो से निर्मुक्त है। **नि.सा.ता. वृ. १०७**

(२) उत्पादव्यय गौणत्वेन सत्ता ग्राहकः शुद्ध द्रव्यार्थिको यथा -द्रव्यं नित्यं। (आ.प.सू. ४८)

अर्थ : उत्पाद व्यय गौण सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य नित्य स्वभावी है।

अथवा - सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय बलेन पूर्वोक्त व्यञ्जन पर्यायेभ्यः सकाशानमुक्तामुक्त समस्तजीवराशयः सर्वथा व्यतिरिक्ता एव। (नि.सा., ता.वृ. गा. १९)

अर्थ : सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के बल से मुक्त तथा अमुक्त सभी जीव पूर्वोक्त (नरनारकादि) व्यंजन पर्याय से सर्वथा व्यतिरिक्त ही है।

(३) भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा - निजगुण पर्याय स्वभावाद् द्रव्यमभिन्नम्। (आ.प.सू. ४९)

अथवा **भेदकल्पना निरपेक्षेणैक स्वभावः (आ.प.सू. १५४)**

अर्थ : भेदकल्पना निरपेक्ष शद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा द्रव्य निज गुण पर्यायों के स्वभाव से अभिन्न है तथा एक स्वभावी है।

अथवा **गुण गुणिचआइ उक्के अत्थे जो णो करइ खलु भेयं।**

सुद्धो सो दव्वत्थो भेय वियप्पेण णिरवेक्खो ॥ न.च.वृ. १४३

अर्थ : गुण, गुणी और पर्याय - पर्यायी रूप ऐसे चार प्रकार के अर्थ मे जो भेद नहीं करता है अर्थात् उन्हें एक रूप ही करता है वह भेद विकल्पों से निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

अथवा

भेद कल्पना निरपेक्षेणे तरेषां धर्माधर्माकाश जीवानां चा खण्डत्वादेक प्रदेशत्वम् ॥ (आ.प. १६८)

अर्थ : भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से धर्म, अधर्म, आकाश और जीव इन चारों बहुप्रदेशी द्रव्यो के अखण्डता होने के कारण एकप्रदेशपना है।

(४) कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धो द्रव्यार्थिको यथा क्रोधादि कर्मज भाव आत्मा। (आ.प.सू. ५०)

अर्थ : कर्मजनित क्रोध आदि भाव ही आत्मा है ऐसा कहना कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

(५) उत्पादव्यय सापेक्षोऽशुद्ध द्रव्यार्थिको यथैकस्मिन समये द्रव्यमुत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मकम्। (आ.प.सू. ५१)

अर्थ : उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा द्रव्य एक समय में ही उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य रूप इस प्रकार त्रयात्मक है।

(६) भेद कल्पना सापेक्षोऽशुद्ध द्रव्यार्थिको यथात्मनो ज्ञान दर्शन ज्ञानादयो गुणाः। (आ.प.सू. ५२)

भेद कल्पना सापेक्षेण चतुर्णामपि नानाप्रदेश स्वभावत्वम्। (आ.प. १६९)

अर्थ : भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा ज्ञान, दर्शन आदि आत्मा के गुण है। (ऐसा गुण गुणी में भेद होता है) तथा धर्म, अधर्म, आकाश और जीव ये चारों द्रव्य अनेक प्रदेश स्वभाव लक्षण वाले हैं।

(७) १. अन्वय सापेक्षो द्रव्यार्थिको यथा गुण पर्याय स्वभावं द्रव्यम्। अन्वय द्रव्यार्थिकेवे नैकस्याप्यनेक स्वभावत्वम् ।(आ.प. ५३, १५५)

अर्थ : अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा गुण पर्याय स्वरुप ही द्रव्य है और इसलिये इस नय की अपेक्षा एक द्रव्य के भी अनेक स्वभावीपना है। (जैसे जीव ज्ञानस्वरुपी है, दर्शन स्वरुपी है इत्यादि।)

**२. विशेष गुण पर्यायान् प्रत्येकं द्रव्यमब्रवीत्।
सोऽन्वयो निश्चयो हेम यथा सत्कटका दिषु ॥ (न.च.श्रु. ७)**

अर्थ : जो सम्पूर्ण गुणों व पर्यायों में से प्रत्येक को द्रव्य बतलाता है, वह विद्यमान कड़े वगैरह में अनुबद्ध रहने वाले स्वर्ण की भांति अन्वय द्रव्यार्थिक नय है।

३. पूर्वोक्तोत्पादादि त्रयस्य तथैव स्वसंवेदन ज्ञानादि पर्याय त्रयस्य चानुगता कारेणान्वय रुपेण यदाधार भूतं तदन्वय द्रव्यं भण्यते, तद्विषयो यस्य स भवत्यन्वय द्रव्यार्थिक नयः। प्र.सा.ता. वृ. १०१/ १४०/११

अर्थ : जो पूर्वोक्त उत्पादादि तीन का तथा स्वसंवेदन ज्ञान, दर्शन, चरित्र इन तीन गुणों का (उपलक्षण से सम्पूर्ण गुण व पर्यायों का) आधार है वह अन्वय द्रव्य कहलाता है वह जिसका प्रयोजन है, विषय है, वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है।

(८) स्वद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिको यथा स्वद्रव्यादि चतुष्ट्यापेयोपक्षया द्रव्यमस्ति। (आ.प.सू. ५४)

अर्थ : स्व द्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल व स्व स्वभाव इस चतुष्टय से ही द्रव्य का अस्तित्त्व है। इन चारों रूप ही द्रव्य का अस्तित्त्व स्वभाव है।

(९) परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिको यथा परद्रव्यादि चतुष्ट्यापेक्षया द्रव्यं नास्ति। (आ.प.सू. ५५)

अर्थ : परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा परद्रव्य, परक्षेत्र, परकालऔर परभाव इस पर चतुष्टय से द्रव्य का नास्तित्त्व है। अर्थात् परचतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य का नास्तित्त्व स्वभाव है।

(१०) १. परमभावग्राहको द्रव्यार्थिको यथा - ज्ञान स्वरूप आत्मा। (आ.प.सू. ५६)

अर्थ : परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा आत्मा ज्ञान स्वभाव में स्थित है।

२. **परम भावग्राहकेण भव्याभव्य पारिणामिक स्वभावः। ... कर्मनोकर्मणोरचेतन स्वभावः। ... कर्मनोकर्मणो मूर्त स्वभावः। ... पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्त स्वभावः। ...काल परमाणुनामेक प्रदेश स्वभावः। (आ.प.सू. १५८, १६१, १६३, १६५, १६७)**

अर्थ : परम भाव ग्राहक नय से भव्य व अभव्य पारिणामिक स्वभावी है। कर्म व नोकर्म अचेतन स्वभावी है, कर्म व नोकर्म मूर्त स्वभावी है। पुद्गल के अतिरिक्त शेष द्रव्य अमूर्त स्वभावी हैं, काल व परमाणु एकप्रदेश स्वभावी हैं।

३. **सर्वविशुद्ध पारिणामिक परम भाव ग्राहकेण शुद्धोपादान भूतेन शुद्ध द्रव्यार्थिक नयेन कर्तृत्व भोक्तृत्व मोक्षादि कारण परिणाम शून्यो जीव इति सूचितः। (स.सा.ता. वृ. ३२०/४०८/५)**

अर्थ : सर्व विशुद्ध पारिणामिक परम भाव ग्राहक शुद्ध उपादान भूत शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से जीव कर्ता, भोक्ता, मोक्ष आदि के कारण रूप परिणामों से शून्य है।

४. **यस्तु शुद्ध द्रव्य शक्ति रूपः शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण परम निश्चय मोक्षः स च पूर्वमेव जीवे तिष्ठतीदानीं भविष्यतीत्येवं न। (द्र.सं.टी. गा. ५७/२३६)**

अर्थ : जो शुद्ध द्रव्य की शक्ति रूप पारिणामिक परम भाव रूप निश्चय मोक्ष है वह तो जीव में पहले ही विद्यमान है। वह अब प्रगट होगा, ऐसा नहीं है।

७०. **शंका : पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?**

समाधान : (१) देखों स. सि. १/६/२१/१

पर्यायोऽर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ पर्यायार्थिकः।

अर्थ : पर्याय ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका वो पर्यायार्थिक नय है।

(२) **द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि.. पर्यायं मुख्यतयानुभवतीति पर्यायार्थिकः।**
(स.सा.आ.ख्या. १३)

अर्थ : द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु में पर्याय को ही मुख्य रूप से जो अनुभव करता है, सो पर्यायार्थिक नय है।

७१. **शंका : पर्यायार्थिक नय को स्पष्ट कीजिए?**

समाधान : देखों न्या.दी. ३/८२/१२६ में कहा है कि -

द्रव्यार्थिक नयमुपसर्जनीकृत्य प्रवर्तमान पर्यायार्थिक नयमवलम्ब्य कुण्डलमानमेत्युक्ते न कटकादौ प्रवर्त्तते, कटकादि पर्यायात् कुण्डल-पर्यायस्य भिन्नत्वात्।

अर्थ : जब पर्यायार्थिक नय की विवक्षा होती है तब द्रव्यार्थिक नय को गौण करके प्रवृत्त होने वाले पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से 'कुण्डल लाओ' यह कहने पर लाने वाला कड़ा आदि के लाने में प्रवृत्त नहीं होता, क्योंकि कड़ा आदि पर्याय से कुण्डल पर्याय भिन्न है।

७२. **शंका : पर्याय के पर्यायवाची नाम कौन कौन है?**

समाधान : देखो स.सि. १/३३/१४१/१ -

पर्यायो विशेषोऽपवादो व्यावृत्तिरित्यर्थः। तद्विषयः पर्यायार्थिकः।

अर्थ : पर्याय का अर्थ विशेष, अपवाद और व्यावृत्ति (भेद) है, और इसको विषय करने वाला नय पर्यायार्थिक नय है।

७३. **शंका : क्या पर्यायार्थिक नय के भी दो भेद हैं?**

समाधान : हाँ, शुद्ध पर्यायार्थिक तथा अशुद्ध पर्यायार्थिक नय के भेद से पर्यायार्थिक नय के भी दो भेद हैं।

७४. शंका : शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

समाधान : देखो आ.प.सू. १९४

शुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजन मस्येति शुद्ध पर्यायार्थिकः।

अर्थ : शुद्ध पर्याय अर्थात् समय मात्र स्थायी षड्गुण हानि वृद्धि द्वारा उत्पन्न सूक्ष्म अर्थ पर्याय ही है प्रयोजन जिसका, वह शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

७५. शंका : अशुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते है?

समाधान : देखो आ.प.सू. १९५

अशुद्ध पर्याय एवार्थः प्रयोजन मस्येत्य शुद्ध पर्यायार्थिकः।

अर्थ : अशुद्ध पर्याय - अर्थात् चिरकाल स्थायी संयोगी व स्थूल व्यञ्जन पर्याय ही है प्रयोजन जिसका, वह अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

७६. शंका : क्या पर्यायार्थिक नय के और भी भेद हैं? यदि है तो स्पष्ट कीजिये?

समाधान : पर्यायार्थिक नय के छः और भी भेद हैं जैसे - देखे **न.च. श्रुत. पृ. ६**

भरतादि क्षेत्राणि, हिमवदादि पर्वतः, पद्मादि सरोवराणि, सुदर्शनादि मेरुनगाः, लवण कालोदकादि समुद्राः, एतानि मध्यस्थितानि कृत्वा परिणता संख्यात द्वीप समुद्राः श्वभ्रपटलानि भवनवासी वाण व्यन्तर विमानानि चंद्रार्कमण्डलादि ज्योतिर्विमानानि सौधर्म कल्पादि स्वर्ग पटलानि यथायोग्य स्थाने परिणता कृत्रिम चैत्य चैत्यालयाः मोक्ष शिलाश्च वृहद् वातवलयश्च इत्येव माद्यनेका द्रव्य पर्यायैः सह परिणत लोक महास्कन्ध पर्यायाः त्रिकाल स्थिताः सन्तोऽनादि निधना इति अनादि नित्यपर्यायार्थिक नयः ।

अर्थ : भरतादि क्षेत्र, हिमवन आदि पर्वत, पद्म आदि सरोवर, सुदर्शन आदि मेरु, लवण व कालोद आदि समुद्र इनको मध्यरुप या केन्द्र रुप करके स्थित असंख्यात द्वीप समुद्र, नरक पटल, भवनवासी व व्यन्तर देवों के विमान, चन्द्र व सूर्य मण्डल आदि ज्योतिषी देवो के विमान, सौधर्म कल्प आदि स्वर्गों के पटल, यथायोग्य स्थानों में परिणत अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय, मोक्ष शिला, वृहद् वातवलय तथा इन सबको आदि लेकर अन्य भी आश्चर्य रुप परिणत जो

पुद्गल की पर्याय तथा उनके साथ परिणत लोक रुप महास्कन्ध पर्याय जो कि त्रिकाल स्थित रहते हुए अनादि निधन है, इनको विषय करने वाला अर्थात् इनकी सत्ता को स्वीकार करने वाला अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय है।

(२) शुद्धनिश्चय नय विवक्षामकृत्वा सकलकर्म क्षयोद्भूत चरम शरीराकार पर्याय परिणति रुप शुद्ध सिद्ध पर्यायः सादिनित्य पर्यायार्थिक नयः।

अर्थ : शुद्ध निश्चय नय को गौण करके सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से उत्पन्न तथा चरम शरीर के आकार रुप पर्याय से परिणत जो शुद्ध सिद्ध पर्याय है उसको विषय करने वाला अर्थात् उसको सत् समझने वाला, सादि नित्य पर्यायर्थिक नय है।

(३) अगुरुलघुकादि गुणः स्वभावेन षड्हानि-षड्वृद्धि रुप क्षणभङ्ग पर्याय परिणतोऽपरिणत सद् द्रव्यानन्तगुण पर्याय संक्रमण दोष परिहारेण द्रव्यं नित्य स्वरुपेऽवतिष्ठमान मिति सत्ता सापेक्ष स्वभाव - नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नयः।

अर्थ : अगुरुलघु आदि गुण स्वभाव से ही षटगुणहानि - वृद्धि रुप क्षणभग अर्थात् एक समयवर्ती पर्याय से परिणत हो रहे है। तो भी सत् द्रव्य के अनन्तो गुण और पर्यायें परस्पर संक्रमण न करके अपरिणत अर्थात् अपने - अपने स्वभाव में स्थित रहते है। द्रव्य को इस प्रकार का ग्रहण करने वाला नय सत्ता सापेक्ष स्वभावनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

(४) सद्गुण विवक्षाभावेन ध्रौव्योत्पत्ति व्ययाधीनतया द्रव्यं विनाशोत्पत्ति स्वरुपमिति सत्तानिरपेक्षोत्पाद व्यय ग्राहक स्वभावानित्याशुद्ध पर्यायार्थिक नयः।

अर्थ : पदार्थ में विद्यमान गुणों की अपेक्षा को मुख्य न करके उत्पाद - व्यय - ध्रौव्य के आधीनपने रुप से द्रव्य को विनाश व उत्पत्ति स्वरुप मानने वाला सत्तानिरपेक्ष या सत्तागौण उत्पाद व्यय ग्राहक स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

(५) चराचर पर्याय परिणत समस्त संसारि जीवनिकायेषु शुद्ध सिद्ध पर्याय विवक्षा भावेन कर्मोपाधि निरपेक्षविभाव नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नयः।

अर्थ : चराचर पर्याय परिणत संसारी जीवधारियों के समूह में शुद्ध सिद्ध पर्याय की विवक्षा से कर्मोपाधि से निरपेक्ष विभाव नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

(यहाँ पर संसार रुप विभाव मे भी यह नय नित्य शुद्ध सिद्ध पर्याय को जानने कि विवक्षा रखते हुए संसारी जीव को भी सिद्ध सदृश बताता है इसी को आ.प. में कर्मोपाधि निरपेक्ष स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहा हैं।)

(६) शुद्ध पर्याय विवक्षा भावेन कर्मोपाधि संजनित नारकादि विभाव पर्यायाः जीव स्वरुपमिति कर्मोपाधि सापेक्ष विभावानित्याशुद्ध पर्यायार्थिक नयः।

अर्थ : जो शुद्ध पर्याय की विवक्षा न करके कर्मोपाधि से उत्पन्न हुई नारकादि विभाव पर्यायों को जीव स्वरूप बताता है वह कर्मोपाधि सापेक्ष विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है। (इसे आ प. में कर्मोपाधि सापेक्ष स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहा है)

सम्यक्त्व रत्नान्नपरं हि रत्नं, सम्यक्त्व मित्रान्नपरं हि मित्रम्।
सम्यक्त्व बन्धोर्न परो हि बन्धुः, सम्यक्त्व लाभान्न परो हि लाभः ॥ सु.सं. ७१५ ॥

अर्थ : सम्यक्त्व रुपी रत्न से बढ़कर दूसरा रत्न नहीं है, सम्यक्त्व रुपी मित्र से बढ़कर दूसरा मित्र नहीं है, सम्यक्त्व रुपी भाई से बढ़कर दूसरा भाई नहीं है और सम्यक्त्व से बढ़कर दूसरा लाभ नहीं है।

जिण वयण मोसहमिणं विसयसुह विरेयणं अभियभूयम्।
जर मरण वाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणां ॥ सु.सं. २६ ॥

अर्थ : यह जिन वचन रुपी औषध विषय सुख का विरेचन करने वाली अमृत रुप है, जरा-मरण की व्याधि को हरने वाली है तथा सब दु:खों का क्षय करने वाली है।

७७. शंका : सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति कितने प्रकार से होती?

समाधान : देखो त.सू. १/३

तन्निसर्गादधि गमाद्वा।

अर्थ : वह सम्यग्दर्शन निसर्ग से अर्थात् परिणाम मात्र से और अधिगम से अर्थात् उपदेश के निमित्त से उत्पन्न होता है।

७८. शंका : क्या कार्योत्पत्ति में निमित्त और उपादान युगपत् पाये जाते है?

समाधान : हाँ, ये दोनों कारण युगपत् पाये जाते है।

७९. शंका : क्या इन्हें ही बाह्य और अंतरंग कारण कहते हैं?

समाधान : हाँ

८०. शंका : क्या इसे ही व्यवहार या निश्चय भी सकते है?

समाधान : आध्यात्मिक दृष्टि से ये दोनों कारण व्यवहार बाह्य कारण कहे जाते है। क्योंकि ये परद्रव्य सापेक्षी भाव है।

८१. शंका : परद्रव्य सापेक्षी भाव क्या निश्चय नहीं हो सकता है?

समाधान : आप नय के प्रकरण में देख चुके है कि निश्चय स्वद्रव्य मे ही अभेद को विषय करने वाला होता है अत: वह आध्यात्मिक दृष्टि से परद्रव्य सापेक्षी नहीं होता है।

८२. शंका : ऐसा क्यों?

समाधान : परद्रव्य सापेक्षी होने से निर्विकल्प रुप नहीं होगा किन्तु सविकल्प हो जायेगा।

८३. शंका : क्या निमित्त उपादान को क्रमशः बहिरंग तथा अंतरंग निमित्त कह सकते है?

समाधान : हाँ, देखें नि. सा. गा. ५३ में कहा है

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिण सुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।

अंतर हेऊ भणिदा दंसण मोहस्स खय पहुदि ॥

अर्थ : सम्यग्दर्शन का बाह्य निमित्त जिन सूत्र है अथवा जिनसूत्र के जानने वाले पुरुष हैं तथा आभ्यंतर निमित्त दर्शनमोह कर्म के क्षय, उपशम व क्षयोपशम को कहा है।

८४. शंका : क्या अंतरंग और बहिरंग कारण और प्रकार से भी है?

समाधान : हाँ, देखों महापुराण ९/११६

देशनाकाल लब्ध्यादि बाह्य कारण संपदि।
अंत:करण समग्रयां भव्यात्मा स्याद् विशुद्ध दृक् ॥

अर्थ : जब देशना लब्धि और काल लब्धि आदि बहिरंग कारण तथा करण लब्धि रुप अंतरंग कारण रुप सामग्री की प्राप्ति होती है तभी यह भव्य प्राणी विशुद्ध सम्यग्दर्शन का धारक हो सकता है।

८५. शंका : क्या करण लब्धि निज हेतु है उसके होने पर ही दर्शन मोह का क्षय, उपशम या क्षयोपशम होता है?

समाधान : हाँ, देखों नय चक्र वृ. गा. ३१५

काउण करण लद्धी, सम्यक् भावस्स कुणहजं गहणं।
उवसम खय मिस्सादो, पयडीणं तं पि णिय हेउं ॥

अर्थ : जिस करण लब्धि को पाकर जीव सम्यक् भाव को तथा प्रकृतियों के उपशम, क्षय व क्षयोपशम को ग्रहण करता है वह करण लब्धि भी सम्यक्त्व में निज हेतु है।

८६. शंका : क्या सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि भी हेतु होते है?

समाधान : हाँ, देखो **श्लोक वार्तिकालंकार मे ३/१/३/११/८२/** २२ में कहा है -

दर्शन मोहस्यापि संपन्नो जिनेन्द्र विम्बादि द्रव्यं समवशरणादि क्षेत्रं, कालश्चार्ध पुद्गल परिवर्तन विशेषादिर्भावश्चाधाप्रवृत्ति करणादि रिति निश्चीयते। तदभावे तदुपशमादि प्रतिपत्ते अन्यथा तदभावात्।

अर्थ : दर्शनमोह के नाश में भी द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव हेतु होते हैं। वहाँ जिनेन्द्र बिम्बादि तो द्रव्य हैं, समवशरणादि क्षेत्र है। अर्द्धपुद्गल परिवर्तन विशेष काल है, अध: प्रवृत्ति करण आदि भाव हैं। उस मोहनीय कर्म का अभाव होने पर ही उपशमादि की प्रतिपत्ति होती है अर्थात् कहे जाते हैं। दूसरे प्रकार से उन उपशमादि के होने का अभाव है।

८७. शंका : "आदि" शब्द से और किन - किन बाह्य हेतुओं को ग्रहण करना चाहिये?

समाधान : स. सि. २/३/१५३/६ में कहा है कि -

'आदि' शब्देन जाति स्मरणादिः परिगृह्यते।

अर्थ : "आदि" शब्द से जातिस्मरण आदि का ग्रहण होता है ये जातिस्मरण आदि बाह्य निमित्त हैं।

१ **न.च.वृ.गा. ३१६** में कहा है कि -

तित्थयर केवलि समण भाव सुमरण सत्थ देव महिमा दी।
इच्चेव माइ बहुगा बाहिर हेउ मुणेयव्वा॥

अर्थ : तीर्थंकर, केवली, श्रमण, भवस्मरण, शास्त्र, देव, महिमा आदि बहुत प्रकार के बाह्य हेतु मानना चाहिये।

८८. शंका : काल लब्धि ही सम्यग्दर्शन का मुख्य कारण माने तो क्या दोष आयेगा?

समाधान : रा. वा. १/३/१०/२४/६ में कहा है कि -

यदि हि सर्वस्य कालो हेतु रिष्टः स्यात् बाह्याभ्यंतर कारण नियमस्य दृष्टेष्टस्य वा विरोधः स्यात्।

अर्थ : यदि सबका काल ही कारण मान लिया जाये (अर्थात् केवल काल लब्धि से ही मुक्ति होना मान लिया जाये) तो बाह्य एवं आभ्यंतर कारण सामग्री का ही लोप हो जायेगा।

८९. शंका : जातिस्मरण आदि बाह्य कारण कौन - कौन से है?

समाधान : जिन बिम्ब दर्शन, धर्म श्रवण, जातिस्मरण, वेदना, अथवा देवर्द्धिदर्शन इस प्रकार जातिस्मरण आदि चार कारण हैं।

९०. शंका : किस गति में कौन - कौन से कारण पाये जाते हैं?

समाधान : १ से ३ नरक में - धर्म श्रवण, जातिस्मरण और वेदना ये ३, ४ से ७ नरक में जातिस्मरण और वेदना ये दो कारण पाये जाते हैं। भोग भूमिज तिर्यञ्चों में - जिनबिम्ब दर्शन, धर्म श्रवण, जाति स्मरणीय ये 3 कारण, कर्म भूमि तिर्यंचो में उपर्युक्त तीन और वेदना ये चार कारण पाये जाते हैं।

भोग भूमिज मनुष्यो मे	- उपर्युक्त तीन कारण पाये जाते है
कर्म भूमिज मनुष्यों में	- उपर्युक्त चार कारण पाये जाते है
भवनवासी देवों में, व्यतंर, ज्योतिषी, सौधर्म सहस्रार तक में	- जिनबिम्ब दर्शन, धर्मश्रवण, जातिस्मरण, देवर्द्धिदर्शन ये चारों कारण पाये जाते है
आनतादि चार स्वर्गो मे	- उपर्युक्त में से देवर्द्धि दर्शन के बिना ३
नवग्रैवेयक में	- जिनमहिमा दर्शन के बिना उपर्युक्त ३ कारण
अनुदिश व अनुत्तर	- एक भी कारण नहीं पाये जाते हैं क्योंकि ये देव सम्यदृष्टि ही होते हैं।

११. शंका : जातिस्मरण और जिनबिम्ब दर्शन क्या निसर्गज सम्यग्दर्शन है?

समाधान : गइ सग्गियमवि पढम सम्मत्तं तच्चट्ठे उत्तं, तं हि एत्थेव दट्ठव्वं, जाइस्सरण जिणबिबं दसणेहि विणा ।

उप्पज्जमाणणइ सग्गिय पढम सम्मत्तस्स असंभवादो /ध.६/१/९, ९, ३०/४३०/९

अर्थ : तत्त्वार्थ सूत्र मे नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व का भी कथन किया गया है, उसका भी पूर्वोक्त कारणो से उत्पन्न हुये सम्यक्त्व मे ही अन्तर्भाव कर लेना चाहिये, क्योंकि जातिस्मरण और जिनबिम्ब दर्शन के बिना उत्पन्न होने वाला नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व असंभव है।

१२. शंका : देवर्द्धि दर्शन का जातिस्मरण में समावेश क्यों नहीं होता?

समाधान : इस विषय को ध.पु. ६/१, ९-९, ३७/४३३/५ में इस प्रकार कहा है कि -

देवर्द्धि दंसणं जाइसरणम्मि किण्ण पविसदि। ण पविसदि, अप्पणो अणिमादि रिद्धी ओ दट्ठूण एदाओ रिद्धीओ जिण पण्णत्त धम्माणुट्ठाणादो जादाओ त्ति पढ़म सम्मत्त पडिवज्जणं जाइस्सरण णिमित्तं। सोहम्मिंदादि देवाणं महिड्ढीओ दट्ठूण एदाओ सम्मद्दंसण संजुत्त संजम फलेण जादाओ, अहं पुण सम्मत्त विरहिददव्वं संजम फलेण वाहणादिणो च देवेसु उप्पण्णो त्ति णादूण पढम सम्मत्तग्गहणं देविद्धि दंसण णिवंधणं। तेण ण दोण्ह

मेयत्त मिदि। किं च जाइस्सरण मुप्पण्ण पढम समयपाहुडि अंतो मुहुत्त कालब्भंतरे चेव होदि। देविद्धि दंसणं पुण कालंतरे चेव होदि, तेण ण दोण्हमेयत्तं। एसो अत्थो णेरयाणं जाइस्सरण वेयणाभिभव णाणं पि वत्तव्वो।

अर्थ : प्र देवर्द्धि दर्शन का जातिस्मरण में समावेश क्यों नहीं होता?

उत्तर :

(१) नहीं होता, क्योंकि अपनी अणिमादिक ऋद्धियों को देखकर जब (देवों को) ये विचार आते हैं- कि ये ऋद्धियाँ जिन भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म के अनुष्ठान से उत्पन्न हुई है तब प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति जातिस्मरण निमित्तक होती है।

किंतु जब सौधर्मेन्द्रादिक देवों की महाऋद्धियों को देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियाँ सम्यग्दर्शन से संयुक्त संयम के फल से प्राप्त हुई है। किंतु मैं सम्यग्दर्शन से रहित द्रव्य संयम के फल से वाहनादिक नीच देवों मे उत्पन्न हुआ हूँ तब प्रथम सम्यक्त्व का ग्रहण देव ऋद्धि दर्शन निमित्तक है। इससे ये दोनों कारण एक नहीं हो सकते हैं।

(२) तथा जातिस्मरण उत्पन्न होने के प्रथम समय से लगाकर अंतर्मुहुर्त काल के भीतर ही होता है। कितु देवर्द्धि दर्शन उत्पन्न होने के समय से अन्तर्मुहुर्त काल के पश्चात् ही होता है। इसलिये भी उन दोनों कारणों में एकत्व नहीं है।

(३) यही अर्थ नारकियो के जातिस्मरण और वेदनाभिभव रूप कारणों में विवेक के लिये भी कहना चाहिये।

९३. शंका : जिन बिम्ब दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण किस प्रकार से है?

समाधान : देखों ध.पु. ६/१, ९-९, २२/४२७/९

कथं जिणबिंब दंसणं पढम सम्मत्तुप्पतीए कारणं?

जिण बिंब दंसणेण णिधत्त णिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिक म्मकलावस्स खयं दंसणादो।

अर्थ : प्र. जिनबिंब दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण किस प्रकार से है?

उत्तर : जिनबिम्ब के दर्शन से निघत्त और निकाचित रुप भी मिथ्यात्वादि कर्म कलाप का क्षय देखा जाता है।

९४. शंका : लद्धि सपण्ण रिसि दंसणं पि पढम सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं होदि तमेत्थ पुध किण्ण भण्णदे।

अर्थ : लब्धि सम्पन्न ऋषियों का दर्शन भी तो प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण होता है अतएव इस कारण को यहाँ पृथक् रुप से क्यों नहीं कहा?

समाधान : यह प्रश्न ध.पु. ६, ९-९, ३०/४३०/६ में किया गया है वहीं इसका उत्तर इस प्रकार से दिया गया है।

ण एदस्स बि जिणबिम्ब दंसणो अतढभावादो । उज्जंत -चंपा - पावा णयरोदि दंसणं वि एदेणविणा पढम सम्मत्त गहणा भावा।

अर्थ : नहीं कहा, क्योंकि लब्धि सम्पन्न मुनियो के दर्शन का भी जिनबिम्ब दर्शन में ही अन्तर्भाव हो जाता है। ऊर्जयन्तपर्वत, चम्पापुर व पावापुर नगर आदि के दर्शन का भी जिनदर्शन के भीतर ग्रहण कर लेना चाहिये।

क्योंकि उक्त प्रदेशवर्ती जिनबिम्बों के दर्शन तथा जिन भगवान के निर्वाण गमन के कथन के बिना प्रथम सम्यक्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता।

९५. शंका : नरकों में यदि जाति स्मरण को सम्यक्त्व का कारण माना जाये तो फिर सभी नारकियों को सम्यक्त्व होना चाहिए, क्योंकि वे सभी अपने विभंगावधि ज्ञान से १, २, ३ आदि भवों को स्मरण करते हैं?

समाधान : ध.पु. ६/१, ९-९, ८/४२२/२ में इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार से दिया है यथा -

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सामान्य रूप से भव स्मरण के द्वारा सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती, किंतु धर्म बुद्धि से पूर्व में किये गए धर्मानुष्ठानों की विफलता के दर्शन अर्थात् स्मरण से ही प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण इष्ट है, जिससे पूर्वोक्त दोष प्राप्त नहीं होता।

और इस प्रकार की बुद्धि सभी नारकियों की होती नहीं है। क्योंकि तीव्र मिथ्यात्व के वशीभूत नारकी जीवों के पूर्व भवों का स्मरण होते हुए भी उक्त प्रकार के उपयोग का अभाव है इसलिये वहाँ जातिस्मरण ही प्रथम सम्यक्त्वोपत्ति का कारण है।

९६. शंका : वेदनानुभव भी सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वेदना अनुभव तो सब नारकियों के साधारण होता है। यदि वह अनुभव सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण हो तो सब नारकी जीव सम्यग्दृष्टि होंगे, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है?

समाधान : पूर्वोक्त शंका का परिहार करते हैं। वेदना सामान्य सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण नहीं है, किंतु जिन जीवो के ऐसा उपयोग होता है कि अमुक वेदना अमुक मिथ्यात्व के कारण या असंयम से उत्पन्न हुई, उन्हीं जीवों की वेदना, सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण होती है। अन्य जीवो की वेदना नरकों में सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण नहीं होती, क्योंकि उसमे उक्त प्रकार के उपयोग का अभाव होता है।

९७. शंका : नारकी जीवों के धर्म श्रवण किस प्रकार संभव है, क्योंकि वहाँ तो ऋषियों के गमन का अभाव है?

समाधान :

(१) नहीं, क्योंकि, अपने पूर्व भव के सम्बन्धी जीवों के धर्म उत्पन्न कराने में प्रवृत्त और समस्त बाधाओ से रहित सम्यग्दृष्टि देवों का नरकों में गमन देखा जाता है।

(२) नीचे की चार पृथिवियों मे धर्मश्रवण के द्वारा प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वहाँ देवों के गमन का अभाव है।

९८. शंका : वहाँ ही विद्यमान सम्यग्दृष्टियों से धर्मश्रवण के द्वारा प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति क्यों नहीं होती।

समाधान : ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं कि नहीं होती, क्योंकि भव सम्बन्ध से या पूर्व वैर के सबंध से परस्पर विरोधी हुए नारकी जीवों के अनुगृह्य अनुग्राहक भाव होना असंभव है।

९९. शंका : जिन महिमा को देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं इसलिए तीन के स्थान पर चार कारणों से मनुष्य, प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं, ऐसा कहना चाहिए?

समाधान :

(१) यह कोई दोष नहीं, क्योकि जिनमहिमा दर्शन का जिन बिम्ब दर्शन मे अन्तर्भाव हो जाता है।

(२) अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के आकाश में गमन करने की शक्ति न होने से उनके चतुर्विध देव निकायों के द्वारा किये जाने वाले नंदीश्वर द्वीपवर्ती जिनेंद्र प्रतिमाओं के महामहोत्सव का देखना संभव नहीं है, इसलिए उनके जिन महिमा दर्शन रूप कारण का अभाव है।

(३) किन्तु मेरू पर्वत पर किये जाने वाले जिनेंद्र महोत्सवों को विद्याधर मिथ्यादृष्टि देखते हैं, इसलिए उपर्युक्त अर्थ नहीं कहना चाहिए, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, अतएव पूवोक्ति अर्थ ही ग्रहण करना चाहिए।

१००. शंका : जिनबिम्ब दर्शन को प्रथम सम्यक्त्व के कारण रूप से क्यों नहीं कहा?

समाधान :

(१) यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जिनबिम्ब दर्शन का जिन महिमा दर्शन में ही अन्तर्भाव हो जाता है। कारण, जिनबिम्ब के बिना जिनमहिमा की उत्पत्ति बनती नहीं है।

१०१. शंका : स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमण रूप जिन महिमाएँ जिनबिम्ब के बिना ही की गयी देखी जाती हैं, इसलिए जिन महिमा दर्शन में जिनबिम्ब दर्शन का अविनाभावीपना क्यों नहीं है?

समाधान : उत्तर :

(१) ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योकि स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमण रूप जिन महिमाओं मे भी भावी जिनबिम्ब का दर्शन पाया जाता है।

(२) अथवा इन महिमाओं मे उत्पन्न होने वाला प्रथम सम्यक्त्व जिनबिम्ब दर्शन निमित्तिक नहीं है। किन्तु जिनगुण श्रवण निमित्तिक है।

१०२. शंका : यहाँ पर (आनतादि चार स्वर्गों में) देव ऋद्धि दर्शन सहित चार कारण क्यों नहीं कहे?

समाधान :

(१) आनत आदि चार कल्पों में महर्द्धि से सयुक्त ऊपर के देवों का आगमन नहीं होता, इसलिए वहाँ महर्द्धि दर्शन पररूप प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण नहीं पाया जाता है।

(२) और उन्हीं कल्पों में स्थित देवों के महर्द्धि का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का निमित्त हो नहीं सकता है। क्योकि उसी ऋद्धि को बार – बार देखने से विस्मय नहीं होता।

(३) अथवा उक्त कल्पों में शुक्ल लेश्या के सद्भाव के कारण महर्द्धि के दर्शन से उन्हें कोई संक्लेश भाव उत्पन्न नहीं होता।

(४) धर्मोपदेश सुनकर जो जाति स्मरण होता है और देवर्द्धि को देखकर जो जातिस्मरण होता है ये दोनों ही यद्यपि प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के निमित्त होते हैं। तथापि उनसे उत्पन्न सम्यक्त्व वहाँ (आनातादि में) जाति स्मरण निमित्तक नहीं माना गया है, क्योंकि यहाँ देवर्द्धि के दर्शन व धर्मोपदेश के श्रवण के पश्चात् ही उत्पन्न हुए जाति स्मरण का निमित्त प्राप्त हुआ है। अतएव यहाँ धर्मोपदेश श्रवण और देवर्द्धि दर्शन को ही निमित्त मानना चाहिए।

१०३. शंका : नव ग्रैवेयकों में महर्द्धि दर्शन नहीं है, क्योंकि यहाँ ऊपर के देवों के आगमन का अभाव है। यहाँ जिन महिमा दर्शन भी नहीं है क्योंकि ग्रैवेयक विमानवासी देव नन्दीश्वर आदि के महोत्सव देखने नहीं आते?

अथवा

ग्रैवेयक देव अपने विमान में रहते हुए ही अवधिज्ञान से जिन महिमाओं को देखते तो हैं, अतएव जिनमहिमा का दर्शन भी उनके सम्यक्त्व की उत्पत्ति में निमित्त होता है, ऐसा क्यों नहीं कहते?

समाधान : नहीं, क्योकि ग्रैवेयक विमानवासी देव वीतरागी होते हैं अतएव जिनमहिमा के दर्शन से उन्हे विस्मय उत्पन्न नहीं होता है।

१०४. शंका : ग्रैवेयक विमानवासी देवों में धर्म श्रवण किस प्रकार संभव होता है?

समाधान : नहीं, क्योंकि उनमे परस्पर संलाप होने पर अहमिन्द्रत्व से विरोध नहीं आता।

१०५. शंका : सम्यग्दर्शन के कितने भेद है?

समाधान : देखें र. सा.गा. ४

सम्मत्त रयणसारं मोक्ख महारुक्ख मूल मिदि भणियं।

तं जाणिज्जइ णिच्छय ववहार सरुव दो भेदं ॥

अर्थ : सम्यग्दर्शन समस्त रत्नो मे सारभूत रत्न है और मोक्षरुपी वृक्ष का मूल है, इसके निश्चय व व्यवहार ऐसे दो भेद जानना चाहिये।

१०६. शंका : व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

समाधान : व्यवहार सम्यग्दर्शन को मुख्य रुप से १० प्रकार के लक्षणो से जाना जा सकता है। यथा -

१. सच्चे देव, शास्त्र व गुरु तथा धर्म की श्रद्धा रुप से

२ आप्त आगम व तत्त्वों की श्रद्धा रुप से

३ तत्त्वार्थ या पदार्थों आदि की श्रद्धा रुप से

४ पदार्थों का विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान रुप से

५ यथावस्थित पदार्थो के श्रद्धान रुप से

६. तत्त्वों के हेयोपादेय रुप से

७. तत्त्व रुचि रुप से

८. सात प्रकृतियों के क्षय, क्षयोपशम व उपशम रुप से

९. सराग रुप से

१० अरहंत की भक्ति रुप से

१०७. शंका : उपर्युक्त लक्षणों को स्पष्ट कीजिये?

समाधान :

(१) देव-शास्त्र-गुरु व धर्म की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन -

१. मो.पा.गा. ९० में देखें

हिंसा रहिये धम्मे अट्ठारह दोस वज्जिए देवे।

णिग्गंथे पवयणे सद्दहणं होई सम्मत्तं ॥

अर्थ : हिंसा रहित धर्म, १८ दोष रहित देव, निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग व गुरु इनमें श्रद्धा होना सम्यग्दर्शन हैं।

२. **श्रद्धानं परमार्थाना माप्तागम तपोभृताम्।**

त्रिमूढ़ा पोढ़ मष्टाङ्गं सम्यग्दर्शन मस्मयम् ॥ र.श्रा. ४॥

अर्थ : सत्यार्थ देव, शास्त्र और गुरु इन तीनों का आठ अंग सहित, तीन मूढ़ता और आठ मद रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

३. **णिज्जिय दोसं देवं सव्व जिणाणं दयावरं धर्म्मं।**

वज्जिय गंथं च गुरुं जो मण्णदि सो दु सद्दिट्ठी ॥ (का.अ. ३१७)

अर्थ : जो वीतराग अरहंत को देव, दया को उत्कृष्ट धर्म और निर्ग्रन्थ को गुरु मानता है वही सम्यग्दृष्टि है।

(२) आप्त, आगम व तत्त्वों की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन -

१. देखें नि.सा.गा. ५

अत्तागम तच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।

अर्थ : आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है।

(३) तत्त्वार्थ या पदार्थों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है -

१. तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं । त.सू. अ. १ सू. २

अर्थ : अपने - अपने स्वभाव में स्थित तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते है।

२. **भावा : खलु कालकलितपञ्चास्तिकायविकल्परुपा नव पदार्थाः।**
(पं.का./त. वृ टीका १०७)

अर्थ : काल सहित पंचास्तिकाय के भेद रुप नव पदार्थ वास्तव में भाव हैं उन भावों का श्रद्धान सो सम्यक्त्व है।

३. **छद दव्व णव पयत्था, पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।**

सद्दहइ ताण रुवं, सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥ द.पा.गा १९

अर्थ : छह द्रव्य, नव पदार्थ, पाँच अस्तिकाय, सप्त तत्त्व, ये जिन वचन में कहे गये हैं। इनके स्वरुप का जो श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि है।

४. छप्पंचण वविहाणं अत्थाणं जिणवरो व इट्ठाणं।

आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥ पं.स./प्रा. १/१५९

अर्थ : जिनवरों के द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थो का आज्ञा या अधिगम से श्रद्धान करना सम्यक्त्व है।

(४) पदार्थों का विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

मिथ्यात्वोदय जनित विपरीताभिनिवेश रहितं श्रद्धानं। केषां संवन्धि। पंचास्तिकाय षड्द्रव्य विकल्प रुपं जीवाजीव द्रव्यं जीव पुद्गल संयोग परिणामोत्पन्नास्त्रवादि पदार्थ सप्तकं चेत्युक्त लक्षणानां भावानां जीवादिनवपदार्थानां। इदं तु नवपदार्थ विषय भूतं व्यवहार सम्यक्त्वं।

पं.का./ता.वृ. १०७/१६९/२८

भावार्थ : मिथ्यात्वोदय जनित विपरीत अभिनिवेश रहित, पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, जीवादि सात पदार्थ अथवा जीवादि नव पदार्थ, इनका जो श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है।

(५) यथावस्थित पदार्थों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है -

दव्वहं जाणइ जह ठियह तह जगि मण्णइ जो जि।

अप्पहं केरउ भावडउ, अविचलु दंसणु सो जि ॥ प.प्र. २/१५

अर्थ : जो द्रव्यों को जैसा उनका स्वरुप है वैसा जाने और उसी तरह इस जगत में श्रद्धान करे, वही आत्मा का चल, मलिन, अवगाढ़ दोष रहित निश्चल भाव है। वही आत्मभाव सम्यग्दर्शन है।

(६) तत्त्वों में हेय व उपादेय बुद्धि सम्यग्दर्शन है -

सुत्तत्थं जिण भणियं जीवा जीवादि बहुविहं अत्थं।

हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥ सू.पा.गा. ५

अर्थ : सूत्र में जिनेन्द्र भगवान ने जीव अजीव आदि बहुत प्रकार के पदार्थ कहे हैं। उनको जो हेय और अहेय रुप से जानता है वह सम्यग्दृष्टि है।

(७) तत्त्व रुचि सम्यग्दर्शन है

तच्चरुई सम्मत्तं (मो.पा. ३८)

(८) सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयक्षयोपशम से सम्यग्दर्शन

पं.का.ता.वृ. १५० - १५१ में कहा है कि -

सप्त प्रकृतिनामुपशमेन क्षायोपशमेन च सराग सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पंचपरमेष्ठि भक्त्यादि रुपेण...।

अर्थ : सात प्रकृतियों के उपशम व क्षयोपशम से सराग सम्यग्दृष्टि होकर पंच परमेष्ठी की भक्ति आदि रुप से (परिणमित होता है)।

क्षीण प्रशान्त मिश्रासु मोह प्रकृतिषु क्रमात्।

तत्स्यात् द्रव्यस्यादि सामग्र्यां पुंसां सद्दर्शनं त्रिधा ॥ ज्ञा. ६/७

अर्थ : मोह कर्म की (३ दर्शन मोह की और ४ अनंतानुबन्धी चारित्र मोह की) प्रकृतियों के क्षय, उपशम व क्षयोपशम रुप होने से क्रमशः तीन प्रकार का सम्यक्त्व होता है।

(९) सरागता के अर्थ में सम्यग्दृष्टि

देखें द्र.सं.टी. ४१/१७७/१२

शुद्ध जीवादि तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षणं सराग सम्यक्त्वाभिधानं व्यवहार सम्यक्त्वं विज्ञेयम्।

अर्थ : शुद्ध जीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धान रुप सराग सम्यक्त्व नामक व्यवहार सम्यक्त्व है ऐसा जानना चाहिये।

(१०) अरहंतो में भक्ति सम्यग्दर्शन है...

अरहंते सुह भत्ती समत्तं। (भा.पा.गा. ४०)

अर्थ : अरहंत में भक्ति सम्यग्दर्शन है।

१०८. शंका : **प्रवचनसार तात्पर्य वृत्ति गाथा ८० के उत्थानिका वाक्य में कहा है कि.....**

अथ चत्तापावारंभं...... इत्यादि सूत्रेण यदुक्तं शुद्धोपयोगभावे मोहादि विनाशो न भवति, मोहादि विनाशाभावे, शुद्धात्मलाभो न भवति तदर्थमेवेदानीमुपायं समालोचयति।

अर्थ : अब 'चत्तापावारंभं' इत्यादि ७९ वीं गाथा द्वारा जो कहा था कि शुद्धोपयोग के अभाव में मोहादि का विनाश नहीं होता है। और मोहादि के विनाश बिना शुद्धात्म लाभ नहीं होता, उसके लिये ही यहाँ उपाय का विचार करते हैं।

समाधान : उक्त शका का समाधान "जो जाणदि अरहंतं" इत्यादि गाथा ८० की तात्पर्य वृत्ति में इस प्रकार से दिया गया है -

जो जाणदि अरहंतं ..... इत्थंभूतं द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं पूर्वमर्हदभिधाने परमात्मनि ज्ञात्वा पश्चान्निश्चयनयेन तदेवागमसारपदभूतयाऽध्यात्मभाषया निजशुद्धात्मभावनाभिमुखरूपेण सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञानेन तथैवागम भाषयाधः प्रवृत्ति करणापूर्व करणा निवृत्तिकरण संज्ञ दर्शन मोह क्षपण समर्थ परिणाम विशेष बलेन पश्चादात्मनि योजयति। तदन्तरमविकल्प स्वरुप रूपे प्राप्ते यथा पर्याय स्थानीय मुक्ताफलानि गुणस्थानीयं धवलत्वं चाभेदनयेन हार एव, तथा पूर्वोक्त द्रव्य गुण पर्याया अभेदनयेनात्मैवेति भावयतो दर्शन मोहान्धकारः प्रलीयते इति भावार्थः।

अर्थ : "जो अरहत को जानता है" .... इस प्रकार द्रव्य गुण पर्याय स्वरुप को पहले कहे हुये अरहंत नामक परमात्मा में जानकर, पश्चात् निश्चय नय से उसी आगम के सारभूत अध्यात्म भाषा द्वारा अपनी शुद्धात्म भावना के सन्मुख सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान से उसी प्रकार आगम भाषा से अधः प्रवृत्तिकरण अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, नामक दर्शन मोह के क्षय में समर्थ परिणाम विशेष के बल से पश्चात् (अपने ज्ञान को) आत्मा में जोड़ता है। तदनतर निर्विकल्प स्वरुप प्राप्त होने पर जैसे अभेद नय से पर्याय स्थानीय मुक्ताफल (मोती) और गुण स्थानीय धवलता (सफेदी) हार ही है। उसी प्रकार अभेद नय से पूर्वोक्त द्रव्य गुण पर्याय आत्मा ही है। इस प्रकार परिणमित होता हुआ (उसका) दर्शन मोह रूप अंधकार विनाश को प्राप्त हो जाता है यह भावार्थ हुआ।

१०९. शंका : क्या अध्यात्म भाषा में कथित "निज शुद्धात्म भावनाभिमुख रुप सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान तथा आगम भाषा में कथित अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रुप परिणाम एक है?"

समाधान : दर्शनमोह के समय एक समान है शेष समय नहीं क्योंकि दर्शन मोह के क्षय में समर्थ अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणाम मात्र एक बार ही होते हैं किंतु (छट्टें, सातवें - गुणस्थान के अनुरूप) निज शुद्धात्माभिमुख रुप सविकल्प रुप स्वसंवेदन अनेकों बार होता है।

११०. शंका : यह कैसे?

समाधान : दर्शन मोह की क्षपणा मे एक बार के ही करण परिणामों से दर्शन मोह के क्षय के सन्मुख जीव दर्शन मोह का क्षय कर देता है। अत: एक बार दर्शन मोह के क्षय हो जाने के पश्चात् फिर पुन: तद्विषयक करण परिणाम नहीं होते है फिर चारित्र मोह की क्षपणा में क्षपक श्रेणी में ही करण परिणाम होते हैं।

१११. शंका : दर्शन मोह की क्षपणा विधि विषयक करण परिणाम तथा चारित्र मोह की क्षपणा विधि विषयक परिणाम क्या एक ही है?

समाधान : नाम से तो एक है किन्तु काम से एक नहीं है। दोनों के काम अलग-अलग है।

११२. शंका : दर्शन मोह की क्षपणा कौन करता है? मिथ्यादृष्टि या उपशम सम्यग्दृष्टि?

समाधान : दर्शन मोह की क्षपणा न मिथ्यादृष्टि करता है और न उपशम सम्यग्दृष्टि। अपितु क्षायोपशिक सम्यग्दृष्टि जीव करता है।

११३. शंका : दर्शन मोह की क्षपणा किन-किन गुणस्थानों में संभव है?

समाधान : दर्शन मोह की क्षपणा - ४, ५, ६, ७ गुणस्थानों में संभव है।

११४. शंका : प्रवचनसार गाथा ८० की तात्पर्यवृत्ति में किस गुणस्थानवर्ती की मुख्यता से कथन है?

समाधान : यह अध्यात्म ग्रंथ है इसमे पाँचवें गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थानवर्ती की प्रधानता से कथन है जैसा कि **स.सा./ता.वृ.गा २०१-२०२** में कहा भी है कि ... ..

११५. शंका : तो फिर यहाँ किस गुणस्थानवर्ती की प्रधानता है?

समाधान : यहाँ पर छट्ठे, सातवें गुणस्थानवर्ती मुनियों की ही प्रधानता है।

११६. शंका : ऐसे कैसे?

समाधान : क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन के धारी मुनि यदि क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं तो सर्वप्रथम द्रव्य गुण पर्याय स्वरुप को पहले कहे हुये अरहंत नामक परमात्मा में जानकर तदनंतर निश्चय से उसी आगम के सारभूत अध्यात्म भाषा से स्वशुद्धात्म भावना के सम्मुख रुप सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान से, उसी प्रकार आगम भाषा से अधः प्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण नाम दर्शन मोह के क्षय में समर्थ परिणाम विशेष के बल से पश्चात् (अपने ज्ञान को) आत्मा में जोड़ता है। तदनन्तर (अप्रमत्तनामक सप्तम गुणस्थानवर्ती) निर्विकल्प स्वरूप प्राप्त होने पर जैसे अभेद नय से पर्याय स्थानीय मुक्ताफल (मोती) और गुणस्थानीय धवलता (सफेदी) हार ही है। उसी प्रकार अभेद नय से पूर्वोक्त द्रव्य गुण पर्याय आत्मा ही है। इस प्रकार परिणमित होता हुआ (उसका) दर्शन मोह रूप अंधकार विनाश को प्राप्त होता है।

चारित्रं निरगाराणां शूराणां शान्तचेतसाम्।
शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्रभयावहम् ॥सु.स. ३४॥

अर्थ : जो शिव-आनंद रुप है, अत्यन्त दुर्लभ है, सिद्ध है, सारभूत है और क्षुद्र जीवों को भय उत्पन्न करने वाला है, ऐसा चारित्र शूरवीर तथा शान्तचित्त मुनियों के होता है।

श्रुतसुरगुरुभक्तिः सर्व भूतानुकम्पा, स्तवननियम दानेष्वस्ति यस्यानुरागः। मनसि न पर निंदात्विन्द्रियाणां प्रशान्तिः, कथित मिह हितज्ञैर्ध्यानं मेवं हि धर्म्यम्॥ सु.स. ५५॥

अर्थ : देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति, सर्व जीवो पर दया, स्तुति, नियम तथा दान में अनुराग, मन में पर निन्दा का भाव नहीं आना तथा इन्द्रियो का शांत रहना ये सब जिसके है उसकी यह प्रवृत्ति हित के ज्ञाता पुरुषों के द्वारा धर्म ध्यान कही गयी है।

११७. शंका : निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

समाधान : निश्चय सम्यग्दर्शन अनेक अर्थो में वर्णित है यथा -

(१) ज्ञेय ज्ञायक अर्थ में (प्र.सा./त.प्र. गा. २४२)

ज्ञेय ज्ञातृ तत्त्व तथा प्रतीति लक्षणेन सम्यग्दर्शन पर्यायेण...

अर्थ : ज्ञेय और ज्ञाता इन दोनों की यथारूप प्रतीति सम्यग्दर्शन का लक्षण है।

(२) १. स्व-पर विभाग अर्थ में (स.सा./आ. ३१४ - ३१५)

स्व परयोर्विभाग दर्शनेन दर्शको भवति।

अर्थ : स्व व पर के विभाग दर्शन से दर्शक होता है।

२. **तेषामेव भूतार्थेनाधिगतानां पदार्थानां शुद्धात्मानः सकाशात् भिन्नत्वेन सम्यग्वलोकनं निश्चय सम्यक्त्वं।**

अर्थ : उन भूतार्थ रूप से, जाने गये जीवादि नौ पदार्थों का शुद्धात्मा से भिन्न करके सम्यक् अवलोकन करना निश्चय सम्यक्त्व है।

(स.सा./ता.वृ. १५५/२२०/११)

(३) शुद्धात्मा के उपादेय अर्थ में (स.सा./ता.वृ. ३८/७२/९)
शुद्धात्मैवोपादेय इति श्रद्धानं सम्यक्त्वम्।

अर्थ : शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसा श्रद्धान सम्यक्त्व है।

(४) रूचि अर्थ में -

१. **विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजपरमात्मनि यद्रुचिरूपं सम्यग्दर्शनम्।**
(स.सा./ता. वृ. २/८/१०)

अर्थ : विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव रूप निज परमात्मा में रूचि रूप सम्यग्दर्शन है।

२. **शुद्ध जीवास्तिकाय रूचिरूपस्य निश्चय सम्यक्त्व...**

(पं.का./ता.वृ. १०७/१७०/९)

अर्थ : शुद्ध जीवास्तिकाय की रूचि निश्चय सम्यक्त्व है।

(५) अतीन्द्रिय सुख की रूचि रूप में -

रागादिभ्यो भिन्नोऽयं स्वात्मोत्थ सुख स्वभाव: परमात्मेति भेद ज्ञानं, तथा स एव सर्वप्रकारोपादेय इति रूचि रूपं सम्यक्त्वं।

अर्थ : रागादि से भिन्न यह जो स्वात्मा से उत्पन्न सुख रूप स्वभाव है वही परमात्म तत्त्व है। वही परमात्म तत्त्व सर्व प्रकार उपादेय है ऐसी रुचि सम्यक्त्व है।

(६) शुद्धोपयोग की भावना अर्थ में -

शुद्धोपयोग लक्षण निश्चय रत्नत्रय भावनोत्पन्न परमाल्हादैक रूप सुखामृत रसास्वादनमेवोपादेयमिन्द्रिय सुखादिके च हेयमिति रूचि रूपं वीतराग - चारित्राविनाभूतं वीतराग सम्यक्त्वाभिधानं निश्चय सम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति। (द्र.सं.टी. ४१/१७८/२)

अर्थ : शुद्धोपयोग रूप निश्चय रत्नत्रय की भावना से उत्पन्न परमाल्हाद रूप सुखामृत रस का आस्वादन ही उपादेय है, इन्द्रिय जन्य सुखादिक हेय है ऐसी रूचि तथा जो वीतराग चारित्र के बिना नहीं होता है ऐसा जो वीतराग सम्यक्त्व है वही निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा जानना चाहिए।

(७) मैं वीतराग सुख स्वभावमय हूँ इस अर्थ में -

रागादिविकल्पोपाधि रहित चित्च्चमत्कार भावोत्पन्न मधुर रसास्वाद सुखोऽहमिति निश्चय रूपं सम्यग्दर्शन् ॥

(द्र.सं.टी. ४०/१६३/१०)

अर्थ : रागादि विकल्प रहित चित् चमत्कार भावना से उत्पन्न मधुर रस के आस्वाद रूप सुख का धारक मैं हूँ। इस प्रकार निश्चय रूप सम्यग्दर्शन है।

(८) सर्वनय पक्ष से रहित समयसार अर्थ में -

सम्मद्दंसण णाणं एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं।
सव्व णय पक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥ (स.सा. १४४)

अर्थ : जो सर्व नयापेक्षों से रहित कहा गया है वह समयसार है, इसी समयसार की सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान संज्ञा है।

११८. शंका : वीतराग चारित्र के अविनाभावीभूत निश्चय सम्यग्दृष्टि साधु ही होते हैं, ऐसा कोई प्रमाण है ?

समाधान : हाँ, देखिये मो.पा.गा. १४

सद्धव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।

सम्मत्त परिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठ कम्माइं ॥

अर्थ : जो साधु अपनी आत्मा में लीन हैं, वे सम्यग्दृष्टि हैं। वे सम्यक्त्व भाव से युक्त होते हुए अष्ट कर्मों का क्षय करते हैं।

११९. शंका : प्रशमादि की प्रकटता को ही सम्यक्त्व क्यों नहीं कहते हो ?

समाधान : प्रशम संवेगानुपास्तिक्याभिव्यक्ति लक्षणं सम्यक्त्वम्। सत्येव असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानाभावः स्यादिति चेत्सत्यमेतत शुद्धनये समाश्रीयमाणे।(ध.पु. १/१, १, ४/१५१/२)

अर्थ : *प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य की प्रकटता ही जिसका लक्षण है उसको सम्यक्त्व कहते हैं।*

प्रश्न : इस प्रकार सम्यक्त्व का लक्षण मान लेने पर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान का अभाव हो जायेगा ?

उत्तर : यह कहना शुद्ध निश्चय नय के आश्रय करने पर ही सत्य कहा जा सकता है।

अथवा - तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। यस्य गमनिकोच्यते आप्तागमपदार्थ-स्तत्त्वार्थस्तेषु श्रद्धान मनुरक्तता सम्यग्दर्शन मिति लक्ष्य निर्देशः। कथं पौरस्तेयेन लक्षणेनास्य न विरोधश्चेन्नैष दोषः शुद्धाशुद्ध समाश्रयणात्।

अथवा तत्त्वरूचि सम्यक्त्वम् अशुद्धतर नय समाश्रयणात्।(ध.पु. १/१, १, ४)

अर्थ : अथवा तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं इसके अर्थ यह है कि आप्त, आगम और पदार्थ को तत्त्वार्थ कहते हैं। और इनके विषय में श्रद्धान अर्थात् अनुरक्ति करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं। यहाँ पर सम्यग्दर्शन लक्ष्य है और आप्त, आगम और पदार्थ का श्रद्धान लक्षण है।

प्रश्न : पहिले कहे हुए (प्रशमादि की अभिव्यक्ति रूप) सम्यक्त्व के लक्षण के साथ इस लक्षण का विरोध क्यों न माना जाये ?

उत्तर : यह कोई दोष नहीं है क्योंकि शुद्ध और अशुद्ध नय की अपेक्षा से ये दोनों लक्षण कहे गये हैं। अर्थात् पूर्वोक्त लक्षण शुद्ध नय की अपेक्षा से है और यह तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप लक्षण अशुद्ध नय की अपेक्षा से है।

अथवा तत्त्वरूचि को सम्यक्त्व कहते हैं। यह लक्षण अशुद्धतर नय की अपेक्षा से जानना चाहिए।

१२०. शंका : क्या निश्चय सम्यक्त्व का कथन भी दो प्रकार से है?

समाधान : हाँ, देखिये **परमात्म प्रकाश टी. २/१७/१३२/८**

अत्राह प्रभाकर भट्टः। निजशुद्धात्मैवोपादेयः इति रूचि रूप निश्चय सम्यक्त्वं भवतीति बहुधा व्याख्यातं पूर्वं भवद्भिः इदानीं पुनः वीतराग चारित्राविनाभूतं निश्चय सम्यक्त्वं व्याख्यातमिति पूर्वापरविरोधः कस्मादिति चेत् निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रूचि रूपंम निश्चय सम्यक्त्वम गृहस्थावस्थायां तीर्थंकर परम देव भरत सगर राम पाण्डवादीनां विद्यते, न च तेषां वीतराग चारित्रमस्तीति परस्पर विरोधः, अस्ति चेत्तर्हि तेषामसंयतत्त्वं कथमिति पूर्वपक्षः। तत्र परिहार माह। तेषां शुद्धात्मोपादेय भावना रूपं निश्चय सम्यक्त्वं विद्यते परं किंतु चारित्रमोहोदयेन स्थिरता नास्ति व्रत प्रतिज्ञा भङ्गो भवतीति तेन कारणेनासंयत वा भण्यन्ते।

शुद्धात्म भावना च्युताः सन्तः भरतादयो... शुभराग योगात सराग सम्यग्दृष्टयो भवन्ति। या पुनस्तेषां सम्यक्त्वस्य निश्चयसम्यक्त्वसंज्ञा-वीतरागचारित्राविनाभूतस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य परंपरया साधकत्वादिति। वस्तुवृत्या तु तत्सम्यक्त्वं सराग सम्यक्त्वाख्यं व्यवहार सम्यक्त्वमेवेति भावार्थः।

अर्थ : प्रश्न : यहाँ प्रभाकर भट्टारक पूछता है कि निज शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी रूचि रूप निश्चय सम्यक्त्व होता है। ऐसा कई बार पहिले आपने कहा और अब वीतराग चारित्र का अविनाभावी निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा कह रहे हैं। दोनों में पूर्वापर विरोध है। वह ऐसे कि निज शुद्धात्म तत्त्व ही उपादेय है ऐसा रुचि रूप निश्चय सम्यक्त्व गृहस्थ अवस्था में तीर्थंकर परमदेव तथा भरत,

सगर, राम, पांडव आदि को रहता है परन्तु उनको वीतराग चारित्र नहीं होता, इसलिए परस्पर विरोध है। यदि होता है ऐसा माने तो उनके असंयतपना कैसे हो सकता है?

उत्तर : उनके शुद्धात्मा के उपादेयता की भावना रूप निश्चय सम्यक्त्व रहता है किन्तु चारित्र मोह के उदय के कारण स्थिरता नहीं है, व्रत की प्रतिज्ञा भंग हो जाती है, इस कारण उनको असंयत कहा है। शुद्धात्म भावना से च्युत होकर शुभ राग के योग से वे सराग सम्यग्दृष्टि होते हैं। उनके सम्यक्त्व को जो निश्चय सम्यक्त्व कहा गया है उसका कारण यह है कि वह वीतराग चारित्र के अविनाभूत निश्चय सम्यक्त्व का परपरा साधन है। वस्तुत: तो वह सम्यक्त्व भी सराग सम्यक्त्व नाम वाला व्यवहार सम्यक्त्व ही है।

१२१. शंका : यहाँ पर चतुर्थ, पंचम गुणस्थानवर्ती को तो निश्चय सम्यग्दर्शन माना है? स्पष्ट उल्लेख है कि -

''निज शुद्धात्मैवोपादेय इति रूचि रूपं निश्चयसम्यक्त्वं गृहस्थावस्थायां तीर्थकरपरमदेवभरतसगररामपाण्डवादीनां विद्यते''

(प.प्र. २/१७/१३२)

अर्थ : निज शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी रूचि रूप निश्चय सम्यक्त्व गृहस्थावस्था में तीर्थकर परमदेव, भरत, सगर, राम पाण्डव आदि को होता है। तो फिर यह कैसे?

समाधान : आपने उक्त ग्रंथ के इस प्रकरण को पढ़ा जरूर, किन्तु अधूरा पढ़ा, पूरा नहीं पढा, अन्यथा प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि आगे कहा है कि -

यः पुनस्तेषां सम्यक्त्वस्य निश्चयसम्यक्त्वसंज्ञावीतरागचारित्रविनाभूतस्य निश्चय सम्यक्त्वस्य परंपरया साधकत्वादिति। (प.प्र. २/१७/१३२)

अर्थ : उनके (तीर्थकर, सगर, रामादि के गृहस्थावस्था में) सम्यक्त्व की जो निश्चय संज्ञा है वह वीतराग चारित्र के अविनाभावी रूप निश्चय सम्यक्त्व का परंपरा से साधक है।

१२२. शंका : दोनों प्रकार के निश्चय सम्यक्त्व को पुनः स्पष्ट कीजिए ?

समाधान : ध्यान दीजिए -

१ साधन रूप निश्चय सम्यग्दर्शन, जिसमें वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है।

२. साध्य रूप निश्चय सम्यक्त्व, जो वीतराग चारित्र के अविनाभावी होता है।

१२३. शंका : साधन रूप निश्चय सम्यक्त्व में क्या वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है, किन्तु हमने तो ऐसा सुना है कि उसे अनंतानुबंधी चार के अभाव में स्वरूपाचरण चारित्र पाया जाता है ?

समाधान : आपने भले ही सुना हो, पर जैनाचार्य प्रणीत आगम में उसे स्वरूपाचरण नहीं किंतु सम्यक्त्वाचरण चारित्र माना है।

यथा देखो - **अ.पा.गा. ७ - ८**

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंच्छा अमूढदिट्ठी य।

उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ ॥

अर्थ : निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ सम्यक्त्व के गुण हैं।

तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाय।

जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ॥

अर्थ : निःशंकितादि गुणों से विशुद्ध वह सम्यक्त्व ही जिन - सम्यक्त्व कहलाता है तथा जिन-सम्यक्त्व ही उत्तम मोक्ष रूप स्थान की प्राप्ति के लिये निमित्तभूत है। ज्ञान सहित जिन-सम्यक्त्व का जो मुनि आचरण करते हैं वह पहला सम्यक्त्व - चरण नामक चारित्र है।

१२४. शंका : स्वरूपाचरण चारित्र में तथा सम्यक्त्वाचरण चारित्र में क्या अंतर है ?

समाधान : सम्यक्त्वाचरण चारित्र को तो आप ऊपर देख ही चुके हैं अतः स्वरूपाचरण चारित्र को भी समझें।

१२५. शंका : स्वरूपाचरण चरित्र किसे कहते हैं?

समाधान : देखें – **प्र.सा./आ.गा. ७**

स्वरूपेचरणं चारित्रं स्व समय प्रवृत्तिरित्यर्थः।

अर्थ : स्वरूप में चरण करना चारित्र है, स्वसमय में प्रवृत्ति करना इसका अर्थ है।

१२६. शंका : स्वसमय में प्रवृत्ति, इसका अर्थ है? स्वसमय किसे कहते हैं?

समाधान : स्वसमय को निम्न प्रकार से समझना चाहिए –

१. **परमप्पा सगसमयं (र.सा.गा. १४०)**

परमात्मा स्वसमय है।

२. **आद सहावम्मिठिदा ते सगसमया मुणेदव्वा (प्र.सा.गा. ९४)**

अर्थ : जो आत्म स्वभाव में लीन है वे स्वसमय जानना चाहिये

३. **जीवो चरित्त दंसण णाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण ॥ (स.सा.गा. २)**

अर्थ : हे भव्य ! जो जीव दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित है वह निश्चय से स्वसमय जानो।

इस प्रकार स्वसमय में प्रवृत्ति करना ही स्वरूपाचरण चारित्र है।

१२७. शंका : उपर्युक्त प्रकार से आत्म स्वरूप में लीन कौन होता है?

समाधान : निर्ग्रंथ मुनि/योगी ही आत्म स्वरूप में लीन होकर निर्वाण को प्राप्त करते हैं। देखें – **मोक्षपाहुड गा. ८३**

णिच्छय णयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।

सो होदि हु सुचरित्तो जोइ सो लहइ णिव्वाणं ॥

अर्थ : जो आत्मा, आत्मा ही विषै आप ही के अर्थि भले प्रकार रत होय है। सो योगि ध्यानी मुनि सम्यक् चारित्रवान भया संता निर्वाण कूं पावे है।

उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह है कि अविरत व देशव्रत गुणस्थान मे स्वरूपाचरण / वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है।

१२८. शंका : ऐसा आप कैसे कहते हो कि उसे (गृहस्थ को) वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है ?

समाधान : देखों, वीतराग चारित्र साध्य है और सराग चारित्र साधन है तो साधन स्वरूप सराग चारित्र के द्वारा ही वीतराग चारित्र प्राप्त होता है, तभी तो सराग चारित्र साधन कहलायेगा। कहा भी है - **द्र.सं.टी. गा. ४५, पृ. १९४**

वीतराग - चारित्रस्य साधकं सराग चारित्रं...।

अर्थ : वीतराग चारित्र का साधक सराग चारित्र है।

अथवा

व्यवहार चारित्रेण साध्यं निश्चय चारित्रं। द्र.सं.गा. ४६ उत्थानिका

अर्थ : व्यवहार चारित्र द्वारा निश्चय चारित्र साध्य है।

१२९. शंका : तो फिर सराग चारित्र किसे कहते हैं ?

समाधान : देखें न.च.वृ. ३३४ गा.

मूलुत्तर समणण्णुणा जारण कहणं च पंच आयारादो।
सो ही तहव सणिट्ठा सराय चरिया हवइ एवं ॥

अर्थ : श्रमण जो मूल व उत्तरगुणों को धारण करता है तथा पंचाचारों का कथन करता है और आठ प्रकार की शुद्धियों में निष्ठ रहता है, वह उसका सराग चारित्र है।

१३०. शंका : सराग चारित्र के पर्यायवाची नाम कौन - कौन से हैं ?

समाधान : अपवादो व्यवहारनय एकदेश परित्याग चापहृत संयमः
सराग चारित्रं शुभोपयोग इति यावदेकार्थः।

(प्र.सा.ता.वृ. २३०/३१५/१०)

अर्थ : अपवाद मार्ग, व्यवहार नय या व्यवहार चारित्र, एकदेश परित्याग, अपहृत सयम, सराग चारित्र या शुभोपयोग ये सभी एकार्थवाची हैं।

१३१. शंका : अनंतानुबंधी एवं अप्रत्याख्यान संबंधी राग के अभाव में पंचम गुणस्थानवर्ती को उतने अंश में तो वीतरागता आती ही है तो उसे वीतराग चारित्र कहने में क्या बाधा है?

समाधान : यह बात सत्य है कि जितने -जितने अंश में राग नष्ट होता है उतने -उतने अंश में वीतरागता आती है किंतु उसे वीतराग चारित्र नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि **प.प्र.गा. २/१७/१३२** में कहा है कि -

निज शुद्धात्मोपादेय इति रूचि रूपम् निश्चय सम्यक्त्वम् "गृहस्थावस्थायां तीर्थंकर परमदेव भरत सगर राम पाण्डवादिनां विद्यते न च तेषां वीतराग चारित्रम् ...।

अर्थात् निज शुद्धात्मा उपादेय है ऐसी रूचि रूप निश्चय सम्यक्त्व है जो गृहस्थ अवस्था में तीर्थंकर परमदेव, भरत, सगर, पाण्डवादियों को पाया जाता है किन्तु उनको वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है।

१३२. शंका : वीतराग चारित्र के पर्यायवाची नाम क्या - क्या हैं?

समाधान : शुद्धात्मनः सकाशादन्यद्बाह्याभ्यंतर परिग्रह रूपं सर्वं त्याज्य मित्युत्सर्गो निश्चय नयः, सर्व परित्यागः परमोपेक्षासंयमो वीतराग चारित्रं शुद्धोपयोग इति यावदेकार्थः। प्र.सा./ता.वृ./२३०/३१५/८

अर्थ : शुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह रूप पदार्थों का त्याग करना उत्सर्ग मार्ग है। उसे ही निश्चय नय, सर्व परित्याग, परमोपेक्षा संयम, वीतराग चारित्र व शुद्धोपयोग कहते हैं। ये सभी एकार्थवाची हैं।

अपकर्तर्यपि सन्तः शुभानि कर्माणि कर्तुमीहन्ते।

धिक्तं पुरुषं सदोपकर्तरि यो योजयत्यशुभम् ॥ सु.सं. १४१॥

अर्थ : सज्जन मनुष्य, अपकार करने वाले का भी भला करने की चेष्टा करते हैं। उस पुरुष को धिक्कार है कि जो सदा उपकार करने वाले का भी बुरा करता है।

१३३. शंका : निश्चय ज्ञान किसे कहते हैं?

समाधान : द्रव्य सं.टी.गा. ४२/१५४/४ पर कहा है कि -

"निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानमेव निश्चय ज्ञानं भण्यते।"

अर्थ : निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान ही निश्चय ज्ञान है।

१३४. शंका : स्वसंवेदन ज्ञान किसे कहते है? कब और कैसा होता है?

समाधान : इस शंका के समाधान को प.प्र. २/२९/१४९/२ देखें -

"निश्चयनयेन पुनर्वीतराग निर्विकल्प समाधिकाले बहिरुपयोगो यद्यप्यनी हितवृत्त्या निरस्तस्तथापीहापूर्वके विकल्पाभावाद् गौणत्वमिति कृत्वा स्वसंवेदन ज्ञानमेव ज्ञानमुच्यते।

अर्थ : निश्चय नय से वीतरागनिर्विकल्प समाधि के समय यहाँ ही अनीहित दृष्टि से उपयोग में से बाह्यपदार्थों का निराकरण किया जाता है। फिर भी इच्छापूर्वक विकल्पों का अभाव होने से गौण करके स्वसवेदन ज्ञान को ही ज्ञान कहते है।

१३५. शंका : स्वसंवेदन ज्ञान क्या सराग भी होता है?

समाधान : हाँ, देखें **प.प्र. टी.गा. १२** में कहा है कि -

स्वसंवेदन ज्ञाने वीतराग विशेषणं किमर्थमिति पूर्व पक्षः । परिहार माह विषयानुभवरूप स्वसंवेदन ज्ञानं सरागमपि दृश्यते तन्निषेद्यार्थ-मित्यभिप्रायः।

अर्थ : प्रश्न - स्वसंवेदन ज्ञान में वीतराग विशेषण किस लिये जोड़ा है?

उत्तर : क्योंकि, विषयानुभव रूप स्वसवेदन ज्ञान तो सरागियों में भी देखा जाता है। अत: उसके निषेध के लिये किया है कि निर्विकल्प ध्यान में स्थित मुनिजनों को उस काल मे वीतराग स्वसवेदन ज्ञान ही होता है। सराग स्वसंवेदन ज्ञान नहीं । (विशेष देखें नं २३१, २३२ शंका समाधान में)

१३६. शंका : वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान में आत्मा किस प्रकार से प्रत्यक्ष होता है उदाहरण सहित समझाइये?

समाधान : देखे **प्रवचनसार ता.वृ. ३३ पृ. ४७.**

यथा कोऽपि देवदत्त आदित्योदयेन दिवसे पश्यति रात्रौ किमपि प्रदीपेनेति। तथादित्योदयस्थानीयेन केवलज्ञानेन दिवस स्थानीय मोक्षपर्याये भगवानात्मानं पश्यति। संसारी विवेकि जनः पुनर्निशास्थानीय संसार पर्याये प्रदीप स्थानीयेन रागादि विकल्प रहित परम समाधिना निजात्मानं पश्यतीति।

अर्थ : जैसे कोई देवदत्त सूर्योदय के द्वारा दिन में देखता है और दीपक के द्वारा रात्रि में कुछ देखता है उसी प्रकार मोक्ष पर्याय में भगवान, आत्मा को केवल ज्ञान के द्वारा देखते है। संसारी विवेकी जन संसार पर्याय में रागादि विकल्प रहित समाधि के द्वारा निजात्मा को देखते है।

१३७. शंका : स्वसंवेदन ज्ञान रूप से आत्मग्राहक भाव श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष है या परोक्ष?

समाधान : देखिये प्र.सा. ता. ९९ पृ. १५९

स्वसंवेदन ज्ञान रुपेन यदात्म ग्राहकं भावश्रुतं तत्प्रत्यक्षं।

अर्थ : स्वसंवेदन ज्ञान रूप से आत्मग्राहक भाव श्रुतज्ञान हैं वह प्रत्यक्ष है।

१३८. शंका : ''आद्ये परोक्षं'' सूत्र के अनुसार भाव श्रुतज्ञान तो परोक्ष है उसे आप प्रत्यक्ष कैसे कहते है?

समाधान : देखिये स.सा./ता.वृ. / १९० में कहा है कि -

यद्यपि केवल ज्ञानापेक्षया रागादि विकल्प रहितं स्वसंवेदन रूपं भाव श्रुतज्ञानं शुद्धनिश्चय नयेन परोक्षं भण्यते, तथापि इन्द्रिय मनोजनित सविकल्प ज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षम्। तेन कारणेन आत्मा स्वसंवेदन ज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षो भवति केवलज्ञानापेक्षया पुनः परोक्षोऽपि भवति। सर्वथा परोक्षं एवेति वक्तुं नायाति। किंतु चतुर्थ कालेऽपि केवलिनः किमात्मानं हस्ते गृहीत्वा दर्शयन्ति तेऽपि दिव्य ध्वनिना भणित्वा गच्छन्ति। तथापि श्रवण काले श्रोतणां परोक्ष एन पश्चात् परम समाधि काले प्रत्यक्षो भवति। तथा इदानीं कालेऽपीति भावार्थः।

अर्थ : यद्यपि केवल ज्ञान की अपेक्षा रागादि विकल्प रहित वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन रूप भावश्रुतज्ञान शुद्ध निश्चय से परोक्ष कहा जाता है तथापि इन्द्रिय मनोजनित सविकल्प ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष है इस प्रकार आत्मा स्वसंवेदन ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष होता हुआ भी केवलज्ञान की अपेक्षा से परोक्ष है। सर्वथा परोक्ष ही है ऐसा कहना नहीं बनता।

चतुर्थ काल में क्या केवली भगवान आत्मा को हाथ में लेकर दिखाते है। वे भी तो दिव्यध्वनि के द्वारा कह कर चले जाते है। फिरभी सुनने के समय श्रोता के लिए जो परोक्ष है वही पीछे परम समाधि काल में प्रत्यक्ष होता है। इसी प्रकार वर्तमान में भी समझना चाहिए।

१३९. शंका : क्या आगम भाषा में कहा गया परोक्ष भाव श्रुतज्ञान ही न्याय / तर्क की भाषा में साम्व्यवहारिक प्रत्यक्ष है। तथा वही स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है?

समाधान : आगम भाषा में जिसे परोक्ष भाव श्रुतज्ञान कहा है उसे ही न्याय की भाषा में सांव्यवहारिक स्वसंवेदन प्रत्यक्ष कहते है किन्तु आध्यात्मिक भावश्रुतज्ञान या स्वसंवेदन इससे अलग है। निश्चय भावश्रुतज्ञान, शुद्धात्माभिमुख (परिणाम), स्वसंवित्ति, निर्विकल्प समाधि ही आत्मा शब्द से कही जाती है तथा वह वीतराग चारित्र के अविनाभाविभूत केवलज्ञान की अपेक्षा परोक्ष फिर भी छद्मस्थों की अपेक्षा प्रत्यक्ष कही जाती है।

१४०. शंका : आगम भाषा तथा आध्यात्मिक भाषा में कथित स्वसंवेदन या भाव श्रुतज्ञान में क्या अंतर है?

समाधान : हाँ, देखो **द्रव्य संग्रह टीका गा. ५ पृ. १३ पंक्ति ९** में कहा है कि -

निश्चय भावश्रुतज्ञानं तच्च शुद्धात्माभिमुख स्वसंवित्ति स्वरूपं स्व संवित्याकारेण सविकल्पमपीन्द्रियमनोजनितरागादि विकल्प जालरहितत्त्वेन निर्विकल्पम्। अभेद नयेन तदेवात्म शब्द वाच्यं वीतरागसम्यक् चारित्र विनाभूतं केवलज्ञानापेक्षया परोक्षमपि संसारिणां क्षायिकज्ञानाभावात् क्षायोपशमिक मविप्रत्यक्षमभिधीयते।

अर्थ : जो निश्चय भावश्रुतज्ञान है वह शुद्धात्माभिमुख स्वसंवित्ति स्वरूप है। परंतु इन्द्रिय मनोजनित रागादि विकल्प जाल से रहित होने के कारण निर्विकल्प है। अभेद नय से वही ज्ञान आत्मा शब्द से कहा जाता है। तथा वह वीतराग सम्यग्चारित्र के बिना नहीं होता है। वह ज्ञान यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा परोक्ष है। तथापि ससारियों को क्षायिक ज्ञान की प्राप्ति न होने से क्षायोपशमिक होने पर प्रत्यक्ष कहलाता है।

१४१. शंका : निश्चय भावश्रुतज्ञान क्या शुद्धात्माभिमुख परिणाम है?

समाधान : हाँ, उपर्युक्त प्रमाण देखें। (शंका नं १४०)

१४२. शंका : निश्चय भावश्रुतज्ञान क्या स्वसंवित्ति है?

समाधान : हाँ, उपर्युक्त प्रमाण से ही समझे। (शंका नं १४०)

१४३. शंका : निश्चय भावश्रुतज्ञान क्या वीतराग निर्विकल्प समाधि का नाम है?

समाधान : हाँ, निश्चय भावश्रुतज्ञान निर्विकल्प समाधि है।

(विशेष देखें शंका समाधान नं १०९ से ११६ में)

१४४. शंका : अभेद नय यह कौन सा नय है?

समाधान : देखिये आ. प. सू. २१६ में कहा है कि -

"तत्र निश्चयनयोऽभेद विषयो..."

अर्थात् उन नयों में निश्चय नय अभेद विषयक है इस कारण उसे अभेद नय भी कहते है।

१४५. शंका : अभेदनय से क्या भावश्रुतज्ञान को आत्मा कह सकते है?

समाधान . हाँ, निश्चय नय से भावश्रुतज्ञान और आत्मा एक ही है अतः उसे आत्मा कह सकते है।

१४६. शंका : तो क्या द्रव्यश्रुतज्ञान आत्मा नहीं है?

समाधान : नहीं, द्रव्यश्रुतज्ञान आत्मा से भिन्न है फिर भी भावश्रुतज्ञान में कारण है

१४७. शंका : द्रव्य श्रुतज्ञान तथा भाव श्रुतज्ञान के स्वरूप को एक बार पुनःसमझाइये?

समाधान : देखिये **गो.सा.जी.का.जी.प्र.टी. ३४८/७४४/१५**

अंगबाह्य सामायिकादि चतुर्दश प्रकीर्णक भेद द्रव्य भावात्मक श्रुतं पुद्गल द्रव्य रूपं वर्ण पदवाक्यात्मकं द्रव्यश्रुतं...।

अर्थ : आचारादि अंग तथा सामायिक आदि १४ प्रकीर्णक अंगबाह्य है यह सब द्रव्यभावात्मक श्रुत है उसमें से पुद्गल द्रव्य रूप वर्ण (अक्षर) पद वाक्यात्मक श्रुत है वह द्रव्य श्रुतज्ञान है। (विशेष देखें शंका समाधान नं २२३ से २२७ में।)

१४८. शंका : तो फिर द्रव्य श्रुतज्ञान को श्रुतज्ञान क्यों कहा ?

समाधान : द्रव्य श्रुतज्ञान भावश्रुतज्ञान का कारण है देखिये

(१) गो.जी.प्र. ३४८/७४४/१५ पर

तच्छ्रवण समुत्पन्न श्रुतज्ञान पर्याय रूपं भावश्रुतं।

अर्थ : द्रव्यश्रुत के सुनने से उत्पन्न श्रुतज्ञान पर्याय रूप भावश्रुतज्ञान है।

(२) और भी देखिये न.च.प्रा.गा. २८७

दव्व सुयादो भावं तत्तो उहयं हवेइ संवेदं।

तत्तो संवित्ति खलु केवल णाणं हवे तत्तो ॥

अर्थ : द्रव्य श्रुत के अभ्यास से भावश्रुत होता है और उससे बाह्याभ्यंतर संवेदन होता है उस संवेदन से शुद्धात्मा की संवित्ति होती है तथा शुद्धात्म संवित्ति से केवलज्ञान होता है।

१४९. शंका : तो द्रव्य रूप व्यवहार श्रुतज्ञान कितने प्रकार का है।

समाधान : द्रव्य रुप व्यवहार श्रुतज्ञान दो प्रकार का है देखिये - द्र. स. टी. गा. ४२/१४४/११

सप्त तत्त्व, नव पदार्थेषु निश्चय नयेन स्वकीय शुद्धात्म द्रव्यं..... उपादेयः शेषं च हेयमिति संक्षेपेण हेयोपादेय भेदेन द्विधा व्यवहारज्ञानमिति।

अर्थ : सात तत्त्व, नव पदार्थों में निश्चय नय सेअपना शुद्धात्म द्रव्य ही उपादेय है इसके सिवाय शुद्ध अशुद्ध पर जीव अजीव आदि सभी हेय हैं। इस प्रकार संक्षेप से हेय तथा उपादेय भेदों से व्यवहार ज्ञान दो प्रकार का है।

१५०. शंका : व्यवहार रुप श्रुतज्ञान क्या विकल्प रुप होता है तथा उससे किस साध्य की सिद्धि होती है ?

समाधान : देखिये पं.का.ता.वृ. गा. ४३/८६

विकल्प रूप व्यवहार ज्ञानेन साध्यम् निश्चय ज्ञानम्।

अर्थ : विकल्प रूप द्रव्य या व्यवहार श्रुतज्ञान है इससे साध्य रूप/निश्चय रूप भावश्रुतज्ञान होता है।

१५१. शंका : भाव श्रुतज्ञान क्या अभेद रत्नत्रयात्मक होता है और आदेय है तो फिर व्यवहार श्रुतज्ञान क्या है?

समाधान : देखिये पं. का.ता. वृ. गा. ४३ पृ. ८६

अभेदरत्नत्रयात्मकं यद्‌भावश्रुतं तदेवोपादेयभूतपरमात्मतत्त्व साधकत्त्वान्निश्चयनयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंग तु व्यवहारेणेति तात्पर्यम्।

अर्थ : अभेदरत्नत्रयात्मक जो भावश्रुतज्ञान है वही उपादेय है और उसका साधक बहिरंग श्रुतज्ञान व्यवहार से उपादेय है ऐसा तात्पर्य है।

१५२. शंका : तो व्यवहार द्रव्य श्रुतज्ञान भी उपादेय है?

समाधान : हाँ, निश्चय के साधक रूप बहिरंग द्रव्य श्रुतज्ञान भी व्यवहार नय से उपादेय है।

१५३. शंका : व्यवहार रुप द्रव्य या बहिरंग श्रुतज्ञान कब तक आदेय है।

समाधान : व्यवहार रुप द्रव्य या बहिरंग श्रुतज्ञान तभी तक उपादेय है जब तक वीतराग चारित्र के अविनाभावी निश्चय या अंतरंग भावश्रुतज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता है।

१५४. शंका : इसी का नाम क्या तत्त्वोपलब्धि है।

समाधान : हॉ, निश्चय वीतराग सम्यग्दर्शन की उपलब्धि निज तत्त्वोपलब्धि के बिना नही होती ।

देखिये **रयणसार** गा. ९० में कहा भी है कि

णियतच्चुवलद्धि विणा सम्मत्तुव लद्धि णत्थि णियमेण।

सम्मत्तुवलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि णियमेण ॥

अर्थ : निज तत्त्वोपलब्धि के बिना (निश्चय) सम्यक्त्व की उपलब्धि नियम से नहीं होती और (निश्चय)सम्यक्त्व की उपलब्धि के बिना निर्वाण नहीं होता।

१५५. शंका : आपने यहाँ निश्चय सम्यक्त्व ऐसा अर्थ कैसे किया?

समाधान : अगर ऐसा नहीं करते तो मिथ्यादृष्टि को भी आत्मोपलब्धि का प्रसग आ जाता।

१५६. शंका : ऐसे कैसे?

समाधान : बिना सम्यक्त्व के उपलब्धि को किसमें गर्भित करते मिथ्यात्व में ही तो।

१५७. शंका : यदि युगपत् मानें तो?

समाधान : तब तो घटित हो ही जायेगा अर्थात् अभेदरत्नत्रय युगपत् होता है अत: जिन्हें अभेदरत्नत्रय पाया जाता है उन्हें आत्मोपलब्धि भी एक साथ पायी जाती है इसीलिये हमने उपरोक्त समाधान में निश्चय या वीतराग यह विशेषण जोड़ा।

१५८. शंका : उपलब्धि किसे कहते है?

समाधान : देखिये **सिद्धि विनिश्चय वृ. १/२/८/१४**

उपलभ्यते अनया वस्तुतत्त्वमिति उपलब्धि अर्थादापन्ना तदाकारा च बुद्धिः।

अर्थ : जिसके द्वारा वस्तु तत्त्व उपलब्ध किया जाता है या ग्रहण किया जाता है वह उपलब्धि है,पदार्थ से उत्पन्न होने वाली तदाकार परणत बुद्धि उपलब्धि है।

इसी बात का खुलासा **पं.का.ता.वृ.गा. ३९** मे कहा है

चेतयन्ते अनुभवन्ति उपलभन्ते विन्दंतीत्येकार्थश्चेत नानुभूत्युपलब्धि वेदनानामेकार्थत्त्वात्।

अर्थ : चेतता है, अनुभव करता है, उपलब्ध करता है और वेदता है, ये एकार्थ है, क्योंकि चेतना, अनुभूति, उपलब्धि और वेदना एकार्थक है।

१५९. शंका : उपलिब्ध किस कर्म के क्षयोपशम से होती है?

समाधान : पं.का. / ता.वृ. ४३/२६/९ में कहा है कि -

मतिज्ञानावरणीय क्षयोपशम जनितार्थ ग्रहण शक्ति रूप लब्धिः।

अर्थ : मति ज्ञानावरणीय (कर्म) के क्षयोपशम से उत्पन्न अर्थ ग्रहण करने की शक्ति को रुप लब्धि को ही उपलब्धि कहते है।

१६०. शंका : अंतरंग में श्रुतज्ञान के क्षयोपशम के बिना क्या द्रव्य श्रुतज्ञान हो सकता है?

समाधान : श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के बिना तो बहिरंग श्रुतज्ञान भी नहीं हो सकता है। अत: आध्यात्मिक भाषा में श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को भी बहिरंग द्रव्य श्रुतज्ञान ही जानता है।

१६१. शंका : ऐसा क्यों कहते हो?

समाधान : क्योंकि क्षयोपशम रूप श्रुतज्ञान तो मिथ्यादृष्टि को भी पाया जाता है।

१६२. शंका : मिथ्यादृष्टि को श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम नहीं पाया जाता है उसे तो कुश्रुतज्ञानावरण कहना चाहिए ?

समाधान : ध्यान रखिये ज्ञानावरण कर्म के पांच ही भेद कहे हैं उसमें सम्यक् या मिथ्या के भेद नहीं हैं देखिये **त.सू. अ.८/सू.६**

मतिश्रुतावधिमनः पर्यय केवलानाम् ।

ज्ञानावरण कर्म के पांच भेद हैं मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मन:पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ।

१६३. शंका : 'विपर्यश्च' यह सूत्र भी तो कहा है?

समाधान : यह सूत्र ज्ञान के विषय में कहा है कि ज्ञान मिथ्या भी होते है।

१६४. शंका : यदि ज्ञान मिथ्या है हो फिर उसके आवारक कर्म भी मिथ्या होना चाहिए?

समाधान : अगर ऐसा माना जाएगा तो फिर ज्ञानावरण कर्म के पाँच भेद नहीं आठ भेद हो जायेंगे।

१६५. शंका : हो जाने दो?

समाधान : तो फिर आगम तथा जिनदेव के वचन गलत ठहरेंगे, फिर उनका सम्यग्ज्ञान भी गलत होगा, क्योंकि सम्यग्ज्ञान वस्तु को न्यूनाधिकता से रहित जानता है । देखिये **रत्नकरण्डक श्रावकाचार** में कहा भी है कि -

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।

नि:संदेहं वेद य, दाहुस्तज्ज्ञान मागमिन: ॥४२ ॥

अर्थ : जो ज्ञान, वस्तु के स्वरूप को न्यूनता रहित, अधिकता रहित, विपरीतता रहित और सदेह रहित, जैसा का तैसा जानता है उस ज्ञान को आगम के ज्ञाता (श्रुतकेवली) सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

१६६. शंका : तो फिर ज्ञान आठ और ज्ञानावरण कर्म के पांच भेद क्यों कहे?

समाधान : मति, श्रुत आदि ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि को समान रुप से होने पर भी सम्यग्दृष्टि का ज्ञान मति, श्रुत आदि रूप है और मिथ्यादृष्टि का ज्ञान कुमति, कुश्रुत रूप है। अज्ञान भाव है।

१६७. शंका : ऐसे कैसे?

समाधान : सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से परमार्थ को सिद्ध करता है जब कि मिथ्यादृष्टि ससार की सिद्धि करता है संसार वर्धक कार्यो मे ही निरंतर संलग्न रहता है।

१६८. शंका : जैसे आप ज्ञान में मिथ्यापना या सम्यक्पना कहते है वैसा ज्ञानावरण में भी क्यों नहीं कहते है?

समाधान : जो आगम मे है वही तो हम कहेगे, आगम से बाहर का या आगम विरुद्ध तो नहीं कहेगे ।

१६९. शंका : क्या वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान मात्र मुनियों को ही होता है?

समाधान : हाँ, मात्र अभेद निश्चय वीतराग निर्विकल्प समाधि मे स्थित मुनियों को ही होता है कहा भी है **त.अ.गा. १६१** में

वेद्यत्त्व वेदकत्त्वं च यत् स्वस्य स्वेन योगिनः।

तत्स्व सवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवंनाम ॥

अर्थ : स्वसंवेदन, आत्मा के उस साक्षात् दर्शन रुप अनुभव का नाम है। जिसमें योगि अपने ही द्वारा अपनी आत्मा का ज्ञेय तथा ज्ञायक भाव को प्राप्त होता है।

और भी देखिये **स.सा.गा. ३८२ क. २२३**

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः,
पूर्वगामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्।
दूरारूढ़ चरित्रिवै भवबलाच्चाञ्चच्चिदर्चिर्मयीं,
विंदन्ति स्वरसाभिषिक्त भुवनां ज्ञानस्य संचेतनाम्॥

अर्थ : जिनका तेज राग-द्वेष रूपी विभाव से रहित है, जो सदा स्वभाव को स्पर्श करने वाले हैं, जो भूतकाल के तथा भविष्य काल के समस्त कर्मों से रहित है और जो वर्तमान काल के कर्मोदय से भिन्न है, वे ज्ञानी अति प्रबल चारित्र के वैभव के बल से ज्ञान की संचेतना का अनुभव करते है जो ज्ञान चेतना चमकती हुई चैतन्य ज्योतिमय है और जिसने अपने रस से समस्त लोक को सींचा है। (विशेष देखें २२८ से २४० शंका समाधान में)

१७०. शंका : वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान के पर्याय वाची नाम कौन कौन से है?

समाधान : भावश्रुतज्ञान, निश्चयश्रुतज्ञान, वीतराग स्वसंवेदन, वीतराग, निर्विकल्प स्वसवेदन, अभेदरत्नत्रय आत्मग्राहक भावश्रुतज्ञान, निश्चयज्ञान, शुद्धात्माभिमुख, स्वसंवित्ति, आत्मानुभव (त अ. १६१) चेतना, अनुभूति, उपलब्धि, वेदना (चेतनानुभूत्युपसलब्धिवेदनानामेकार्थत्त्वात्) (पं.का./ता.वृ. ३९/७९)

१७१. शंका : स्वसंवेदन रूप भावश्रुतज्ञान, केवलज्ञान सदृश कैसे है?

समाधान : स्वसंवेदनज्ञानरूपेण यदात्मग्राहकं भावश्रुतं तत्प्रत्यक्षं यत्पुनर्द्वादशाङ्ग चतुर्दशपूर्व रूप परमागम संज्ञं तच्च मूर्तामूर्तोभय परिच्छित्ति विषये व्याप्ति ज्ञान रूपेण परोक्षमपि केवलज्ञान सदृश मित्यभिप्रायः। पं.का./ता.वृ./९९/१५९

अर्थ : स्वसंवेदन ज्ञान रूप से आत्मग्राहक भावश्रुतज्ञान है वह प्रत्यक्ष हैऔर जो बारह अंग, चौदह पूर्व रुप परमागम नाम वाला ज्ञान है वह मूर्त, अमूर्त व उभय रूप अर्थों के जानने के विषय में अनुमान ज्ञान के रूप में परोक्ष होता हुआ भी केवलज्ञान सदृश है।

१७२. शंका : शब्दात्मक श्रुतज्ञान क्या परोक्ष ही है?

समाधान : हाँ, देखिये वृ. द्र. सं. टी. ५/१६/१

शब्दात्मकं श्रुतज्ञानं परोक्षमेव तावत् स्वर्गापिवर्गादि बहिर्विषय परिच्छित्ति परिज्ञानंविकल्प रूपं तदपि परोक्षं।

अर्थ : श्रुतज्ञान के भेदों में शब्दात्मक श्रुतज्ञान तो परोक्ष ही है और स्वर्ग, मोक्ष आदि बाह्य विषयों की परिच्छित्ति (ज्ञान) रूप विकल्पात्मक ज्ञान भी परोक्ष ही है।

१७३. शंका : मैं अनंतज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ ऐसा विचार करना प्रत्यक्ष श्रुतज्ञान है या परोक्ष?

समाधान : देखिये वृ. द्र. सं. टी. गा. ५

यत्पुनरभ्यन्तरे सुखदुःखविकल्परुपोऽहमनंतज्ञानादिरूपोऽहमिति वा तदीषत्परोक्षम्।

अर्थ : यह जो आभ्यंतर में सुख, दुःख के विकल्प रूप या "अनत ज्ञानादि रूप मैं हूँ" ऐसा ज्ञान होता है वह ईषत् परोक्ष है।

१७४. शंका : तो फिर वीतराग चरित्र के अविनाभावी निश्चय भावश्रुत-ज्ञान/स्वसंवित्ति सविकल्प है या निर्विकल्प? प्रत्यक्ष है या परोक्ष?

समाधान : देखें वृ. द्र. सं. टी. गा. ५

यच्च निश्चय भावश्रुतज्ञानं तच्च शुद्धात्माभिमुखंसंवित्तिस्वरूपं स्वसंवित्याकारेण सविकल्पमयीन्द्रिय मनोजनितरागादिविकल्पजाल रहितत्त्वेन निर्विकल्पम्। अभेदनयेनतदेवात्मशब्दवाच्यं वीतरागं सम्यक् चारित्राविनाभूतं केवलज्ञानापेक्षया परोक्षमपि संसारिणां क्षायिक ज्ञानाभावात् क्षायोपशमिकमपि प्रत्यक्षमभिधीयते।

अर्थ : परन्तु जो निश्चय भाव श्रुतज्ञान है वह शुद्धात्माभिमुख (परिणाम) स्वसंवित्ति स्वरूप है। यह यद्यपि संवित्ति के आकार रूप से सविकल्प है परंतु इन्द्रिय मनोजनित रागादि विकल्प जाल से रहित होने के कारण निर्विकल्प है। वह ज्ञान यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा से परोक्ष है, तथापि संसारियों को क्षायिक ज्ञान की प्राप्ति न होने से क्षायोपशमिक होने पर भी "प्रत्यक्ष" कहलाता है।

१७५. शंका : संवित्ति के आकार का क्या अर्थ है?

समाधान : देखें वृ.न.च.गा. ३५०

लक्खण दो णियलक्खे अणुहवयाणस्स जं हवे सोक्खं।
सा संवित्ति भणिया सयल वियप्पाण णिद्दहणा ॥

अर्थ : निजात्मा के लक्ष्य से सकल विकल्पों को दग्ध करने पर जो सौख्य होता है उसे संवित्ति कहते हैं।

१७६. शंका : तत्त्वार्थ सूत्र में श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है फिर वह प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है?

समाधान : देखिये वही **वृ. द्र. सं.टी.गा. ५** इसी प्रकार प्रश्न उत्पन्न कर समाधान दिया गया है।

अत्राह शिष्यः आद्ये परोक्षमिति तत्त्वार्थसूत्रे मतिश्रुतद्वयं परोक्षं भणितं तिष्ठति कथं प्रत्यक्षं भवतीति, परिहारमाह - तदुत्सर्गव्याख्यानम्, इदं पुनरपवाद व्याख्यानम्।

अर्थ : प्र. 'आद्ये परोक्षम्' इस प्रकार तत्त्वार्थ सूत्र में मति और श्रुत इन दोनों ज्ञानों को परोक्ष कहा है फिर श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है?

उत्तर : तत्त्वार्थ सूत्र में उत्सर्ग व्याख्यान की अपेक्षा कहा है और यहाँ अपवाद व्याख्यान की अपेक्षा कहा गाय है।

१७७. शंका : उत्सर्ग व्याख्यान किसे कहते हैं?

समाधान :

(१) देखिये द.पा.टी.गा. २४

सामान्योक्तौ विधिरुत्सर्गो:।

अर्थ : सामान्य रूप से कही जाने वाली विधि को उत्सर्ग कहते हैं।

(२) स.सि. १/३३/१४०/९ में कहा है कि -

द्रव्यं सामान्यमुत्सर्गः अनुवृत्तिरित्यर्थः।

अर्थ : द्रव्य का अर्थ सामान्य, उत्सर्ग और अनुवृत्ति है उसका विषय करने वाला नय द्रव्यार्थिक नय है।

१७८. शंका : श्रुतज्ञान, उत्सर्ग व्याख्यान की अपेक्षा परोक्ष, तो अपवाद व्याख्यान की अपेक्षा प्रत्यक्ष कैसे है, स्पष्ट कीजिए?

समाधान : वृ. द्र. सं. टी. गा. ५ में ही -

यदि तदुत्सर्ग व्याख्यानं न भवति तर्हि मतिज्ञानं कथं तत्त्वार्थे परोक्षं भणितं तिष्ठति। तर्क शास्त्रे सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षं कथं जातम्। यथा अपवाद व्याख्यानेन मतिज्ञानं परोक्षमपि प्रत्यक्ष ज्ञानं तथा स्वात्माभिमुख भावश्रुतज्ञानमपि परोक्षं सत्प्रत्यक्षं भण्यते। यदि पुनरेकान्तेन परोक्ष भवति तर्हि, सुखदुःखादिसंवेदनमपि परोक्षं प्राप्नोति, न च तथा।

अर्थ : यदि तत्त्वार्थ सूत्र में उत्सर्ग का व्याख्यान न होता तो फिर तत्त्वार्थ सूत्र में मतिज्ञान परोक्ष कैसे कहा जाता? और यदि सूत्र के अनुसार वह सर्वथा परोक्ष ही होता, तो तर्क शास्त्र में सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कैसे हुआ? इसलिए जैसे अपवाद व्याख्यान से परोक्ष रूप भी मतिज्ञान को, प्रत्यक्ष कहा जाता है उसी प्रकार स्वात्माभिमुख भाव श्रुतज्ञान भी परोक्ष होनें पर भी सत् सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा जाता है।

यदि एकान्त से मति, श्रुत दोनों (ज्ञान) परोक्ष ही हो तो सुख-दुःख आदि का जो संवेदन होता है वह भी परोक्ष ही होगा। किन्तु वह स्वसंवेदन परोक्ष नहीं है।

१७९. शंका : आध्यात्मिक दृष्टि से मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान किसे कब उपादेय है?

समाधान : देखिये पं. का. ता. वृ. गा. ४३

निर्विकार शुद्धात्मानुभूत्यभिमुखं यत् मति ज्ञानं तदेवोपादेयभूतानन्त सुख साधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरङ्ग पुनर्व्यवहारेणेति तात्पर्यम्। ... अभेद रत्नत्रयात्मकं यद्भाव श्रुतं तदेवोपादेयभूत परमात्म तत्त्व साधकत्वा निश्चय नयेनोपादेयं, तत्साधकं बहिरङ्ग तु व्यवहारेणेति तात्पर्यम्।

अर्थ : निर्विकार शुद्धात्मानुभूति के अभिमुख जो मतिज्ञान है वही उपादेयभूत अनन्त सुख का साधक होने से निश्चय से उपादेय है और उसका साधक बहिरंग मतिज्ञान व्यवहार से उपादेय है ऐसा तात्पर्य है।

इसी प्रकार अभेद रत्नत्रयात्मक जो भावश्रुतज्ञान है वही उपादेयभूत परमात्म तत्त्व का साधक होने से निश्चय से उपादेय है और उसका साधक बहिरंग श्रुतज्ञान व्यवहार से उपादेय है ऐसा तात्पर्य है।

१८०. शंका : स्वसंवेदन के साथ आप 'वीतराग' विशेषण क्यों जोड़ते हो, क्या सरागियों को भी स्वसंवेदन होता है?

समाधान : हाँ, देखिये इस प्रश्न का समाधान स.सा.ता.वृ.गा. १६

ननु वीतराग स्वसंवेदन विचार काले वीतराग विशेषणं किमिति क्रियते प्रचुरेण भवद्भिः, किं सरागमपि स्वसंवेदन ज्ञानमस्तीति? अत्रोत्तरं विषय सुखानुभवानंद रूपं स्वसंवेदन ज्ञानं सर्वजन प्रसिद्धं सरागमप्यस्ति शुद्धात्म सुखानुभूतिरूपं स्वसंवेदन ज्ञानं वीतरागमिति इदं व्याख्यानं स्वसंवेदन व्याख्यान काले सर्वत्र ज्ञातव्यम्।

अर्थ : प्रश्न - वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान का विचार करते हुए आप सर्वत्र "वीतराग" विशेषण क्यों लगाते हैं। क्या सराग को भी स्वसंवेदन ज्ञान होता है?

उत्तर : विषय सुख आनंद रूप स्वसंवेदन ज्ञान सर्वजन प्रसिद्ध है। वह सराग को भी होता है। परन्तु शुद्धात्म सुखानुभूति रूप स्वसंवेदन ज्ञान वीतराग को ही होता है। स्वसवेदन ज्ञान के प्रकरण मे सर्वत्र यह व्याख्यान जानना चाहिए।

१८१. शंका : वीतरागता किस गुणस्थान से प्रारंभ होती है?

समाधान : स. सा. ता. वृ. २०१ - २०२ / २७९/५ में इस विषय को इस प्रकार से समझाया गया है -

रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति भणितं भवद्भिः तर्हि चतुर्थ पञ्चम गुणस्थान वर्तिनतीर्थकरकुमार भरत-सगर-राम-पाण्डवादयः सम्यग्दृष्टयो न भवन्ति। इति तन्न, मिथ्यादृष्टयपेक्षया त्रिचत्वारिंश प्रकृतीनां बंधाभावात् सराग सम्यग्दृष्टयो भवन्ति। कथं इति चेत् चतुर्थ गुणस्थानवर्तिनां जीवानां अनन्तानुबन्धि क्रोध मानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनितानां पाषाणरेखादि समानानां रागादिनामभावात् पञ्चमगुणस्थानवर्तिनां पुनर्जीवानां अप्रत्याख्यान क्रोध मानमायालोभोदयजनितानां भूमि रेखादि समानानां रागादिनामभावात्। अत्र तु ग्रंथं पञ्चम गुणस्थानादुपरितन गुणस्थानवर्तिनां वीतराग सम्यग्दृष्टिनां मुख्य वृत्याग्रहणं, सराग सम्यग्दृष्टिनां गौण वृत्येति व्याख्यान सम्यग्दृष्टि व्याख्यान काले सर्वत्र तात्पर्येण ज्ञातव्यम्।

अर्थ : प्रश्न : रागी जीव सम्यग्दृष्टि नहीं होता, ऐसा आपने कहा है तो चौथे व पाँचवें गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकेंगे?

उत्तर : ऐसा नहीं है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा ४३ प्रकृतियों के बन्ध का अभाव होने से सरागसम्यग्दृष्टि होते हैं। वह ऐसे कि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के तो पाषाण रेखा सदृश अनंतानुबंधी चतुष्क रूप रागादिकों का अभाव होता है और पञ्चम गुणस्थानवर्ती जीव के भूमिरेखा सदृश अप्रत्याख्यान चतुष्क रूप रागादिकों का अभाव होता है।

यहाँ इस ग्रंथ में पञ्चम गुणस्थान से ऊपर वाले गुणस्थानवर्ती वीतराग सम्यग्दृष्टियों को मुख्य रूप से ग्रहण किया गया है और सराग सम्यग्दृष्टियों को गौण रूप से। सम्यग्दृष्टि के व्याख्यान काल में सर्वत्र यही जानना चाहिए।

१८२. शंका : शुद्धनय स्वरूप पांच भाव के आश्रय से ही क्या निश्चय सम्यक्त्व होता है?

समाधान : हाँ, देखिये स.सा.गा. १४ में कहा है कि -

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणी हि ॥

अर्थ : जो नय आत्मा को बन्ध रहित, पर के स्पर्श रहित, अन्यत्व रहित, चलाचलता रहित, विशेष रहित, अन्य के सयोग से रहित ऐसे पाच भाव रूप से देखता है उसे हे शिष्य ! तू शुद्धनय जान। इस नय के आश्रय से ही निश्चय सम्यग्दर्शन होता है।

१८३. शंका : परम पंचम भाव क्या वीतराग सम्यग्दृष्टि के ही गोचर होता है?

समाधान : हाँ, देखो नि.सा.ता.वृ.गा. १७८ क. २९७

भावा पञ्च भवन्ति येषु सततं भावः परः पञ्चमः।
स्थायी संसृति नाश कारण मयं सम्यग्दशां गोचरः ॥

अर्थ : भाव पांच है जिनमें यह पचम परम भाव (पारिणामिक भाव) निरन्तर स्थाई है। जो संसार के नाश का कारण है और वह (वीतराग) सम्यग्दृष्टियों को ही होता है।

१८४. शंका : क्या आत्मानुभूति शुद्ध नयाश्रित ही होती है?

समाधान : हाँ, देखो **स.सा.आ.गा. १४ क. १३** में कहा है.

आत्मानुभूति रिति शुद्ध नयात्मिकाया।
ज्ञानानुभूतिरियमेष किलेति बुद्ध्वा ॥

अर्थ : जो पूर्व कथित शुद्धनय स्वरुप आत्मा की अनुभूति है वही वास्तव में ज्ञान की अनुभूति है।

१८५. शंका : क्या शुद्धात्मा योगियों को ही प्रत्यक्ष होती है इतर को नहीं?

समाधान : देखिये **पं.का.ता.वृ. १२७/१९०** में इस विषय को इस प्रकार से समझाया गया है कि -

यद्याप्यनुमानेन लक्षणेन परोक्ष ज्ञानेन व्यवहार नयेन धूमादग्निवढ शुद्धात्मा ज्ञायते तथापि रागाढिविकल्परहित स्वसंवेदन ज्ञान समुत्पन्न... सुखामृत जलेन... भरितावस्थानां परम योगिनां यथा शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति तथेतराणां न भवति ।

अर्थ : यद्यपि अनुमान लक्षण परोक्ष ज्ञान के द्वारा व्यवहार नय से धूम से अग्नि की भाति अशुद्ध आत्मा जानी जाती है परन्तु रागादिविकल्प से रहित स्वसवेदन ज्ञान से उत्पन्न सुखामृत से परिपूर्ण परम योगियों को जैसा शुद्धात्मा प्रत्यक्ष होता है वैसा अन्य को नहीं होता।

१८६. शंका : इतर को नहीं होती इसका क्या तात्पर्य है?

समाधान : इसे **प्र.सा.ता.वृ. २५४/३४४** में कहा है कि -

विषय कषाय निमित्तोत्पन्नार्तरौद्र ध्यानद्वयेन परिणतानां गृहस्थानामात्माश्रित निश्चय धर्मस्यावकाशो नास्ति।

अर्थ : विषय कषाय के निमित्त से उत्पन्न आर्त्तरौद्र ध्यान में परिणत ग्रहस्थ जनो को आत्माश्रित धर्म का अवकाश नहीं है।

१८७. शंका : क्या मुनियों को ही आत्मध्यान होता है गृहस्थों को नहीं होता?

समाधान : इस प्रश्न के उत्तर में **देखें मो.पा.टी. २/३०५/९**

मुनिनामेव परमात्म ध्यानं घटते। तप्तलोह गोलक समान गृहिणां परमात्म ध्यानं न संगच्छते।

अर्थ : मुनियों को ही परमात्म ध्यान घटित होता है तप्त लोहे के गोले के समान गृहस्थों को परम आत्म ध्यान नहीं होता है।

यही भाव देवसेन सूरिकृत भाव संग्रह ३७१-३९७, ६०५ में भी कहा है।

१८८. शंका : भावश्रुतज्ञान / स्वसंवेदनज्ञान शुद्धात्मा को जानता है तो क्या वह निश्चय श्रुतकेवली कहा जाता है?

समाधान : हाँ, देखिये स.सा.ता.वृ.गा. १०

यो भावश्रुतरुपेण स्वसंवेदन ज्ञान बलेन शुद्धात्मानं जानाति स निश्चय श्रुतकेवली भवति। यस्तु स्वशुद्धात्मानं न संवेदयति न भावयति बर्हिविषयं द्रव्यश्रुतार्थ जानाति स व्यवहार श्रुतकेवली भवतीति ।

अर्थ : जो भावश्रुतरुप स्वसंवेदन ज्ञान के बल से शुद्धात्मा को जानता है वह निश्चय श्रुतेकवली होता है। जो शुद्धात्मा का सवेदन तो नहीं करता है किन्तु वहिर्विषय रूप द्रव्यश्रुत को जानता है वह व्यवहार श्रुतकेवली होता है।

१८९. शंका : क्या इस काल में श्रुत केवली हो सकते है?

समाधान : देखिये स.सा.ता.वृ.गा. १०

ननु तर्हि - स्वसंवेदनज्ञानवलेनास्मिन् कालाऽपि श्रुतकेवलि भवति? तन्न यादृशं पुरुषाणां शुक्लध्यानरुपं स्वसंवेदन ज्ञानं तादृशमिदानीं नास्ति किन्तु धर्मध्यानंयोग्यमस्तीत्यर्थः।

अर्थ : प्रश्न : तब तो स्वसंवेदन ज्ञान के बल से इस काल में श्रुतकेवली हो सकता है?

उत्तर : नहीं, क्यों कि जिस प्रकार का शुक्ल ध्यान रुप स्वसंवेदन ज्ञान पूर्व पुरुषों को होता था वैसा इस काल मे नही होता है किन्तु धर्म ध्यान के योग्य है।

१९०. शंका : प्रवचन सार गा. २३८ ता. वृ. टीका में किस आत्मा को मोक्ष का कारण माना है?

समाधान : देखिये वहाँ कहा है कि -

तत्र मोक्ष कारणं चिन्त्यते। मिथ्यात्वरागादिरूपा बहिरात्मावस्था तावदशुद्धा, मुक्ति कारणं न भवति। मोक्षावस्था शुद्धा फलभूता, सा चाग्रे तिष्ठति। एताभ्यां द्वाभ्यां भिन्नायान्तरात्मावस्था सा मिथ्यात्वरागादि-रहितत्त्वेनशुद्धा। यथा सूक्ष्म निगोत ज्ञाने शेषावरणे सत्यपि क्षयोपशम ज्ञानावरणं नास्ति तथा त्रापि केवलज्ञानावरणे सत्यप्येकदेश क्षयोपशम-ज्ञानापेक्षया नास्त्यावरणम्। यावतांशेन निरावरणारागादिरहितत्त्वेन शुद्धा च तावतांशेन मोक्षकारणं भवति। तत्र शुद्ध पारिणामिकभाव रूपं परमात्मद्रव्यं ध्येयं भवति, तच्चतस्मादन्तरात्मध्यानावस्था विशेषात्कथं चिद्‌भिन्नम्। यदैकान्तेनाभिन्नं भवति तदा मोक्षेऽपि ध्यानं प्राप्नोति, अथवास्य ध्यानपर्यायस्य विनाशे सति तस्यपारिणामिक भावस्यापि विनाशः प्राप्नोति। एवं बहिरात्मान्तरात्म परमात्मकथन रूपेण मोक्षमार्गो ज्ञातव्याः।

अर्थ : वहाँ मोक्ष के कारण का विचार करते है। मिथ्यात्व रागादि रूप बहिरात्मा दशा - अशुद्ध दशा है वह मोक्ष का कारण नहीं है। तथा मोक्ष दशा शुद्धफलभूत है, वह आगे प्रगट होती है। इन दोनों से भिन्न जो अन्तरात्मदशा है वह मिथ्यात्व रागादि से रहित होने के कारण शुद्ध है। जैसे सूक्ष्म निगोदिया जीव के ज्ञान मे शेष आवरण होने पर भी क्षयोपशम-ज्ञानावरण नहीं है वैसे यहाँ भी केवलज्ञानावरण होने पर भी एकदेश क्षयोपशम ज्ञान की अपेक्षा आवरण नहीं है।

जितने अंशों में आवरण रहित और रागादि से रहित होने के कारण शुद्ध, उतने अंशों में मोक्ष का कारण है वहाँ शुद्ध पारिणामिक भाव रूप परमात्मा द्रव्य ध्येय है और वह उस अन्तरात्मा रूप ध्यान दशा विशेष से कथंचित् भिन्न है। यदि वह एकान्त से उससे अभिन्न हो तो मोक्ष में भी ध्यान प्राप्त होता है अथवा इस ध्यान पर्याय का विनाश होने पर उस पारिणामिक भाव का भी विनाश प्राप्त होता है।

१९१. शंका : तीनों आत्माओं को संक्षिप्त रूप में बताईये, समझाइये।

समाधान : उपरोक्त कथन का तात्पर्य है कि आत्मा तीन प्रकार की होती है : (१) बहिरात्मा (२) अतरात्मा (३) परमात्मा। इनमें से बहिरात्मा अशुद्धात्मा है, अंतरात्मा शुद्धात्मा है तथा परमात्मा शुद्ध फल रूप आत्मा है।

१९२. शंका : अन्तरात्मा तो संसारी है वह शुद्धात्मा कैसे हो सकती है?

समाधान : अन्तरात्मा, संसारी होने पर भी एक देश शुद्ध है क्योकि अविरत सम्यग्दृष्टि के अनंतानुबंधी जन्य राग नहीं है, देशव्रती के अप्रत्याख्यानजन्य राग नहीं है। ६ से १० वें गुणस्थानवर्ती मुनि के प्रत्याख्यानजन्य राग नहीं है। ११-१२ वे गुणस्थानवर्ती मुनि के संज्वलन जन्य राग नहीं है। अर्थात् जितना जितना राग का अभाव हुआ आत्मा उतने उतने अंश रूप शुद्ध हुई। इसीलिये वह एकदेश शुद्ध कही जाती है।

१९३. शंका : तो क्या अंतरात्मा एकदेश रूप से ही मोक्ष का कारण है?

समाधान : हाँ, जितने अंश मे रागादि का अभाव है वह शुद्ध अश ही मोक्ष का कारण है।

१९४. शंका : यहाँ ध्यान क्या है तथा ध्येय क्या है इसे एक बार पुन: स्पष्ट रूप से समझा दीजिये?

समाधान : शुद्ध पारिणामिक भाव अर्थात् शुद्धात्म द्रव्य ध्येय है। ध्यान करने योग्य है तथा अन्तरात्मा की एकाग्रता ध्यान है। दोनो एक नहीं है, भिन्न है।

१९५. शंका : ऐसा क्यों, दोनों एक क्यों नहीं है?

समाधान : क्योंकि यदि शुद्ध पारिणामिक भाव और अंतरात्मा रूप ध्यान को दोनों को एक रूप अभिन्न मान लिया जाये तो सबसे बडी दो समस्या/बाधा खड़ी हो जाएगी : (१) या तो फिर सिद्ध परमेष्ठियों को भी सिद्धालय मे ध्यान मानना पड़ेगा अथवा (२) ससारी अवस्था का अभाव मानना पडेगा।

१९६. शंका : सिद्धों में ध्यान मान लेने में क्या हानि है?

समाधान : ध्यान तो अग्निवत् होता है और अग्नि तभी तक होती है जब तक ईधन हो, ईधन के अभाव में अग्नि नहीं पाई जाती है, इसी प्रकार कर्म रूपी ईधन होने पर ही ध्यान का अस्तित्त्व संभव है। किन्तु सम्पूर्ण कर्म क्षीण हो जाने पर सिद्धों के ध्यान नहीं पाया जाता है। अत: शुद्ध परम पारिणामिक भाव अंतरात्मा रूप ध्यान पर्याय नहीं है वह बात सिद्ध हुई।

१९७. शंका : अच्छा तो संसारी जीवों में शुद्ध पारिणामिक भाव तथा ध्यान अंतरात्मा दशा को एक अभिन्न मान लेने पर उसका (जीव का) अभाव कैसे ठहरेगा ?

समाधान : अंतरात्मा रूप ध्यान एक पर्याय है जो समय समय पर नष्ट होती रहती है, बदलती रहती है। यदि हम उसे अंतरात्मा रूप ध्यान अवस्था को शुद्ध पारिणामिक भाव के साथ एक अभिन्न मानेगें तो ध्यान के नष्ट होने के साथ साथ शुद्ध पारिणामिक जीवत्व भाव को भी नष्ट हुआ मानना पड़ेगा। फिर जीव द्रव्य का शाश्वत अस्तित्त्व नहीं रहेगा। उसके अस्तित्त्व का भी अभाव हो जाएगा। इसलिए ध्यान रूप अंतरात्मा को तथा ध्येय रूप शुद्ध पारिणामिक भाव को एक मानने मे और भी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। अतः दोनों को एक नहीं मानना चाहिए यह बात सिद्ध हुई।

१९८. शंका : तो फिर यहाँ पर अंतरात्मा ध्यान रूप से ही स्वीकार की गई है ?

समाधान : हाँ, अध्यात्म ग्रंथों में अंतरात्मा को ध्यान रूप से ही स्वीकार किया गया है।

१९९. शंका : तो क्या अध्यात्म भाषा में अंतरात्मा के तीन भेद नहीं होते ?

समाधान : चरणानुयोग में कथित अंतरात्मा के ही तीन भेद होते है द्रव्यानुयोग मे कथित अंतरात्मा के तीन भेद नहीं होते अपितु यहाँ पर मुख्य रुप से निर्विकल्प ध्यान लीन मुनि की (उत्तम) अंतरात्मा ही ग्राह्य है शेष नहीं। इसीलिये ही अंतरात्मा को ध्यान रूप कहा गया है शुद्ध पारिणामिक रूप नहीं।

२००. शंका : तो क्या चरणानुयोग में कथित अंतरात्मा ध्यान रूप से नहीं ग्रहण की गई है ?

समाधान : नहीं, चरणानुयोग कथित अतरात्मा को ध्यान पर्याय रूप से नहीं माना है। अपितु उसे यथायोग्य गुणस्थानों मे स्थाई माना है। अत: द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग मे कथित अंतरात्मा को एक नहीं मानना चाहिए।

२०१. शंका : यदि चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग कथित अंतरात्मा को एक मान ले तो क्या दोष आयेगा ?

समाधान : दोनों अनुयोगों में कथित अंतरात्मा को एक मान लेंगे तो चतुर्थ, पंचम् आदि गुणस्थानों को भी अंतर्मूहूर्त प्रमाण मानना पड़ेगा। क्योंकि ध्यान अंतर्मूहर्त से अधिक नहीं होता और ऐसा मानने पर अंतर्मूहूर्त के पश्चात् उक्त गुणस्थानवर्ती महाव्रती तो है नहीं कि छट्ठे सातवें गुणस्थान में झूलना प्रारंभ कर दे, अत: वे मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होंगे। आदि अनेक दोष उत्पन्न होंगे अत: दोनों की परिभाषाएँ एक नहीं है, अलगअलग हैं। उन्हें एक मानने की भूल नहीं करना चाहिए।

२०२. शंका : तो क्या यहाँ अंतरात्मा ध्यान लीन मुनि के ही साक्षात् मोक्ष का कारण माना गया है, शेष को नहीं?

समाधान : हाँ, यहाँ पर अन्तरात्मा ध्यान लीन मुनि को ही मोक्ष का साक्षात् कारण माना गया है शेष को नहीं।

२०३. शंका : १. निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव ही क्या अंतरात्मा है?

२. अंतरात्मा ही क्या ज्ञानी कहा जाता है?

३. क्या वही निश्चयरत्नत्रय लक्षण रूप शुद्धोपयोग को प्राप्त करता है?

४. क्या वही वीतराग चारित्र के अविनाभावि वीतराग सम्यग्दृष्टि है?

५. वही निर्विकल्प समाधि रूप परिणाम में परिणति करता है?

समाधान : उक्त पांचों प्रश्नों के समाधान में स सा ता.वृ ७४ में कहा है कि –

यः पुनः सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा स ज्ञानी जीवः स मुख्यवृत्त्या निश्चयरत्नत्रय लक्षण शुद्धोपयोगबलेननिश्चयचारित्राविनाभावि वीतराग-सम्यग्दृष्टि भूत्वानिर्विकल्प समाधिरूप परिणाम परिणतिं करोति।

अर्थ : जो (सप्तम गुणस्थानवर्ती) सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा है वह ज्ञानी जीव है। वह मुख्य रूप से निश्चय रत्नत्रय लक्षण वाले शुद्धोपयोग के बल से निश्चय चारित्र के अविनाभावि भूत वीतराग सम्यग्दृष्टि होकर निर्विकल्प समाधि रूप परिणाम में परिणति करता है।

२०४. शंका : अंतरात्मा किसे कहते है?

समाधान : देखिये **का.अ.गा. १९४**

जो जिणवयणे कुसला, भेयं जाणंत्ति जीव देहाणं ।

णिज्जिय दुट्ठट्ठ मय अंतर अप्पा य ते तिविहा॥

अर्थ : जो जिनवचनों में कुशल है, जीव और देह के भेद को जानते है तथा जिन्होंने आठ दुष्ट मदों को जीत लिया है वे अंतरात्मा है।

२०५. शंका : सभी अंतरात्मा क्या एक सदृश है या उनके भेद भी है?

समाधान : सभी अतरात्मा एक समान नहीं है अपितु उनके भेद भी है इसे पूर्व गाथा मे कहा भी गया है कि अंतरात्मा के तीन भेद है।

२०६. शंका : तीनों प्रकार की अंतरात्मा को स्पष्ट कीजिए। ?

समाधान : देखिये **द्रव्य संग्रह टीका गा. १४/४९** में कहा है कि -

अविरत गुणस्थाने तद्योग्याशुभलेश्या-परिणतो जघन्यान्तरात्मा, क्षीणकषायगुणस्थाने पुनरुत्कृष्टः, अविरतक्षीणकषायोमध्ये मध्यमः।

अर्थ : अविरत गुणस्थान में उसके योग्य अशुभ लेश्या से परिणत जघन्य अन्तरात्मा है और क्षीणकषाय गुणस्थान में उत्कृष्ट अंतरात्मा है। अविरत और क्षीणकषाय गुणस्थानो के बीच मे जो सात गुणस्थान है सो उनमे मध्यम अंतरात्मा है।

२०७. शंका : जघन्य अंतरात्मा के लक्षणों को समझाईए।

समाधान : देखिये **का.अ.गा. १९७**

अविरय सम्मादिट्ठो होंति जहण्णा जिणिंदपयभत्ता।

अप्पाणं णिंदंता गुण गहणे सुट्ठु अणुरत्ता॥

अर्थ : जो जीव अविरत सम्यग्दृष्टि है वे जघन्य अंतरात्मा है। वे जिन भगवान के चरणों के भक्त होते है। अपनी निंदा करते रहते है और गुणों को ग्रहण करने मे बडे अनुरागी होते है।

२०८. शंका : मध्यम अंतरात्मा किसे कहते है ?

समाधान : **का.अ.गा.** १९६ मे कहा है कि -

सावय गुणेहिं जुत्ता, पमत्त विरदा य मज्झिमाहोंति।

जिण वयणे अणुरत्ता उवसम सीलामहासत्ता॥

अर्थ : श्रावक के व्रतों को पालने वाले गृहस्थ और प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि मध्यम अंतरात्मा होते है। ये जिनवचन में अनुरक्त रहते है। उपशम स्वभावी होते है और महापराक्रमी होते है।

२०९. शंका : उत्तम अंतरात्मा कौन है ?

समाधान : देखिये **का.अ.गा. १९५**

पंचमहव्वय जुत्ता धम्मे सुक्के वि संहिदा णिच्चं ।

णिज्जिय सयलपमाया उक्किट्ठा अंतरात्मा होंति॥

अर्थ : जो पाँच महाव्रतों से सहित है, सदा धर्मध्यान या शुक्लध्यान मे स्थित रहते है तथा जो समस्त प्रमादों को जीत चुके है वे उत्कृष्ट अंतरात्मा है।

२१०. शंका : अध्यात्म ग्रंथों में क्या इसी उत्तम अंतरात्मा की प्रधानता है ?

समाधान : हाँ, देखों **प.प्र.गा. १४/२१/१३**

देह-विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ।

परमसमाहिपरिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ॥

अर्थ : जो पुरुष परमात्मा को शरीर से जुदा केवलज्ञान कर पूर्ण जानता है वही परम समाधि में तिष्ठता हुआ अंतरात्मा है अर्थात् पडित विवेकी है।

२११. शंका : परम समाधि में लीन ही उत्तम अंतरात्मा ग्राह्य है क्या ?

समाधान : हाँ, परम समाधि में लीन मुनि ही उत्तम अंतरात्मा है वे ही यहाँ ग्राह्य है देखो **नि.सा.गा. १५०**

जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा।

जो जल्पों (विकल्पों) मे नहीं वर्तता अर्थात् निर्विकल्प रहता है वह अंतरात्मा कहलाता है।

अथवा मो.पा.गा. ५ में कहा है कि -

अंतरअप्पा हु अप्प संकप्पो ॥

अर्थ : बहुरि अन्तरात्मा है सो अतरंग विषै आत्मा का प्रकट अनुभव गोचर सकल्प है।

२१२. शंका : क्या वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान अंतरात्मा को ही होता है?

समाधान : हाँ, देखो **प.प्र.टी.गा. १२**

अंतरात्म-लक्षण-वीतराग-निर्विकल्प-स्वसंवेदन ज्ञानेन ।

अर्थ : (आध्यात्मिक) अतरात्मा लक्षण वाला वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान होता है।

२१३. शंका : स्वसंवेदन तथा आत्मानुभव एक ही है?

समाधान : हाँ, देखे **त.अनु. श्लो. १६१**

तत्स्व संवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवं दृशम् ॥

अर्थ : वह स्वसंवेदन आत्मा के साक्षात् दर्शन रूप अनुभव का नाम है।

२१४. शंका : क्या स्वसंवेदन और शुद्धोपयोग एक ही है?

समाधान : हाँ, देखें **द्र.सं.टी. ४१/१७७**

शुद्धोपयोग लक्षण स्वसंवेदन ज्ञानेन

अर्थ : शुद्धोपयोग लक्षण स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा .

२१५. शंका : आत्मानुभूति तथा ज्ञानानुभूति क्या एक है?

समाधान : देखो **स.सा.आ. १४ क. १३**

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूति-रियमेव किलेति बुद्ध्वा ॥
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प -
मेकोकोऽस्ति नित्यमवबोध घनः समन्तात् ॥

अर्थ : शुद्ध नय स्वरूप आत्मा की अनुभूति ही ज्ञान की अनुभूति है। अत: आत्मा को आत्मा मे निश्चल स्थापित करके सदा सर्व और एक ज्ञानघन आत्मा है इस प्रकार देखों।

२१६. शंका : आत्मग्राहक कौन सा दर्शन है?

समाधान : देखे प.प्र.टी. अ. २/गा. ३४/१५५

अत्र चतुष्टय मध्ये मानसम चक्षुदर्शनमात्मग्राहकम् भवति ।

अर्थ : चारों दर्शनों मे से मानस अचक्षुदर्शन आत्मग्राहक है।

२१७. शंका : क्या इस विषय में कोई मत भेद है?

समाधान : हाँ, तत्त्वानुशासन का मत उक्त प्रमाण से भिन्न है। देखिये **श्लोक नं. १६६, १६७**

मोहीन्द्रिया धिया दृश्यं रूपादि रहितत्त्वत:।
वितर्कास्तत्र पश्यन्ति ते त्थवि स्पष्ट तर्कणा:॥
उभयस्मिन्नि रुद्धे तु स्याद्धि स्पष्ट मतीन्द्रियम्।
स्वसंवेद्यं हि तद्रूपं स्व संवित्त्यैव दृश्यताम्॥

अर्थ : रूपादि से रहित होने के कारण वह आत्म स्वरूप इन्द्रिय ज्ञान से दिखाई देने वाला नही है। तर्क करने वाले उसे देख नहीं पाते। वे अपनी तर्कणा में भी विशेष रूप से स्पष्ट नही हो पाते हैं। इन्द्रिय और मन दोनो के विरुद्ध होने पर अतीन्द्रिय ज्ञान विशेष रूप से स्पष्ट होता है। अपना वह आत्मा स्वसवेदन के गोचर होता है उसे स्वसवेदन के द्वारा ही देखना चाहिए।

२१८. शंका : आत्मा कौन है तथा वह कैसे प्राप्त किया जाता है?

समाधान : देखो प्र.सा ता.वृ. परिशिष्ट -

ननु कोऽयमात्मा कथं चावाप्यत इति चेत्, अभिहितमेततपुनरव्यभिथीयते। आत्मा हि तावच्चैतन्य सामान्य व्याप्तानन्त धर्माधिष्ठात्रेकं द्रव्यमनन्तधर्मव्यापकानन्तनयव्याप्येक श्रुतज्ञान लक्षण प्रमाणपूर्वक स्वानुभव प्रमीय माणत्वात्।

अर्थ : प्र. यह आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त किया जाता है?

उत्तर : आत्मा वास्तव में चैतन्य सामान्य से व्याप्त अनन्त धर्मों का अधिष्ठाता एक द्रव्य है, क्योंकि अनन्त धर्मो मे व्याप्त होने वाला जो एक श्रुतज्ञान स्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाण पूर्वक स्वानुभव से प्रमेय होता है।

ओर भी देखें **स.सा.ता.वृ. २९६**

कथं स गृह्यते आत्मा 'दृष्टि विषयो न भवत्यमूर्तत्वात्' इति प्रश्नः? प्रज्ञाया भेद ज्ञानेन गृह्यते इत्युत्तरम्।

अर्थ : प्र. वह आत्मा कैसे ग्रहण की जाती है क्योंकि अमूर्त होने के कारण वह दृष्टि का विषय नहीं है ?

उत्तर : प्रज्ञा रूप, भेद ज्ञान के द्वारा ग्रहण की जाता है।

२१९. शंका : आत्मा को किस प्रकार कौन जानता है?

समाधान : इसे **प्रवचनसार तात्पर्यवृत्ति गाथा ८६** में देखें तद्यथा -

वीतरागसर्वज्ञ प्रणीत शास्त्रात् "एगो मे सस्सदो अप्पा" इत्यादि परमात्मोपदेशक श्रुतज्ञानेन तावदात्मानं जानीते कश्चिद भव्यः, तदनन्तरं विशिष्टाभ्यासवशेन परमसमाधिकाले रागादि, विकल्प रहित मानस प्रत्यक्षेण च तमेवात्मानं परिच्छिनत्ति, तथैवानुमानेन वा। तथाहि अत्रैवदेहे निश्चय नयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मास्ति। कस्माद्धेतोः निर्विकारस्वसंवेदन प्रत्यक्षत्वात् सुखादिवत इति, तथैवान्येऽपि पदार्थ यथासंभव मागमाभ्यासबलोत्पन्नं प्रत्येक्षणानुमानेन वा ज्ञायन्ते। ततो मोक्षर्थिना भव्येनागमाभ्यासः कर्तव्यः इति तात्पर्यम्।

अर्थ : वह इस प्रकार कोई भव्य वीतराग सर्वज्ञ देव द्वारा कहे गये शास्त्र से एक मेरा शाश्वत आत्मा इत्यादि परमात्मा का उपदेश देने वाले श्रुतज्ञान द्वारा सर्वप्रथम आत्मा को जानता है और उसके बाद विशिष्ट अभ्यास के वश से परम समाधि लीनता के समय रागादि विकल्पों से रहित मानस प्रत्यक्ष (स्व संवेदन प्रत्यक्ष) से उसी आत्मा को जानता है अथवा उसी प्रकार अनुमान से जानता है। वह इस प्रकार निश्चय नय से शरीर में शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव परमात्मा है सुखादि के समान विकार रहित स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष रूप से यह जाना जाता है उसी प्रकार अन्य भी पदार्थ यथा संभव आगम अभ्यास के बल से उत्पन्न प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से जाने जाते है। इसलिए भव्य मोक्षार्थी को आगम का अभ्यास करना चाहिए यह तात्पर्य है।

२२०. शंका : उपर्युक्त कथन में जो परमात्मा के उपदेशक गुरु तथा शास्त्र के प्रथम आत्मा को जानना आवश्यक है क्या?

समाधान : हाँ, सच्चे शास्त्र व गुरु के उपदेश के बिना आत्मा का सही तरह से ज्ञान भी नहीं हो सकता है।

२२१. शंका : परमात्मोपदेशक गुरु की क्या आवश्यकता है, आत्मा का ज्ञान तो मात्र शास्त्र स्वाध्याय से भी हो जाता है?

समाधान : सच्चे उपदेशक निर्ग्रंथ गुरु के बिना तथा अल्पज्ञान के कारण शास्त्रों के शब्दों के अन्यथा रूप अर्थ भी संभव है अत: गुरु सही अर्थ तक पहुँचाते है। इसलिए यहाँ परमात्मोपदेशक गुरु की बात कही गई है।

२२२. शंका : इस प्रकार आगम या गुरुओं से आत्मा को जानना कौन सा ज्ञान है?

समाधान : यह द्रव्य श्रुतज्ञान है।

२२३. शंका : तो भाव श्रुत से भी आत्मा को जाना जा सकता है?

समाधान : हाँ, भाव श्रुतज्ञान से जाना जाता है। इसे जानने के लिए ही द्रव्य श्रुतज्ञान प्रयोजनवान् है तथा साधन है और यह साध्य है।

२२४. शंका: भाव श्रुतज्ञान कितने प्रकार से होता है?

समाधान : दो प्रकार से एक प्रत्यक्ष दूसरा अनुमान।

२२५. शंका : प्रत्यक्ष भाव श्रुतज्ञान के भी कोई भेद है क्या?

समाधान : हाँ, इसके भी दो भेद हैं - एक वीतराग दूसरा सराग।

२२६. शंका : वीतराग प्रत्यक्ष भावश्रुतज्ञान के भी क्या कोई भेद है?

समाधान : हाँ, एक निर्विकल्प दूसरा सविकल्प ये दो भेद है।

२२७. शंका : वीतराग निर्विकल्प प्रत्यक्ष भाव श्रुतज्ञान को अध्यात्म भाषा में क्या कहते है?

समाधान : वीतराग निर्विकल्प प्रत्यक्ष भाव श्रुतज्ञान को अध्यात्म भाषा में वीतराग निर्विकल्प समाधी, वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन, वीतराग निर्विकल्प स्वानुभव, वीतराग निर्विकल्प स्वात्मानुभूति, शुद्धोपयोग, निश्चय धर्मध्यान आदि शब्दों से कहा जाता है।

२२८. शंका : वीतराग निर्विकल्प प्रत्यक्ष भाव श्रुतज्ञान या वीतराग निर्विकल्प स्वात्मानुभूति क्या योगियों, मुनियों को ही होती है?

समाधान : हाँ, यह एक मात्र वीतराग समाधी लीन मुनियों को ही होती है। इसीलिये इसे योगी प्रत्यक्ष भी कहते है।

२२९. शंका : तो क्या यह गृहस्थों को भी संभव नहीं है?

समाधान : नहीं, यह गृहस्थों को संभव नहीं है।

२३०. शंका : कभी कभी अल्प समय के लिये भी गृहस्थों को क्या ये हो सकती है?

समाधान : नहीं, गृहस्थावस्था मे कभी भी कितना भी वीतराग निर्विकल्प समाधी रूप निश्चय धर्म ध्यान संभव नहीं है।

(देखिये शंका समाधान मे २५२, २८१)

२३१. शंका : तो क्या सराग स्वसंवेदन भी होता है और वह किसे होता है?

समाधान : हाँ, विषय सुखानुभवानंद रुप स्वसंवेदन ज्ञान भी होता है। और वह सरागी जीवो को होता है (देखें शका नं १८०)

२३२. शंका : सराग स्वसंवेदन के भी कोई भेद है?

समाधान : हाँ, सराग स्वसवेदन के भी दो भेद हैं - एक सविकल्प धर्म ध्यान रूप दूसरा आर्तरौद्र ध्यान रूप।

२३३. शंका : गृहस्थों को सविकल्प धर्मध्यान रूप स्वसंवेदन ज्ञान कैसे पाया जाता है?

समाधान : गृहस्थों को जिनाभिषेक, पूजा, स्वाध्याय, जाप, मुनियों की सेवा, आहार दान आदि रूप सराग स्वसवेदन रूप व्यवहार धर्मध्यान पाया जाता है।

२३४. शंका : तो गृहस्थों को आर्त्तरौद्र ध्यान रूप स्वसंवेदन ज्ञान कैसे पाया जाता है?

समाधान : विषय जनानद रूप सराग स्वसंवेदन तो जगत् प्रसिद्ध है जो कि गृहस्थावस्था में गृहस्थों को सभव है ही।

२३५. शंका : तो वीतराग सविकल्प भावश्रुतज्ञान को अध्यात्म ग्रंथों में क्या कहते है ?

समाधान : वीतराग सविकल्प भावश्रुतज्ञान को अनुमान ज्ञान, निर्विकार सविकल्प स्वसंवेदन कहते है।

२३६. शंका : वीतराग सविकल्प भाव श्रुतज्ञान या अनुमान ज्ञान के द्वारा आत्मा किस प्रकार जानी जाती है ?

समाधान : शुद्ध निश्चयनय से मैं इस शरीर में भी शुद्धबुद्ध एक स्वभाव वाला परमात्मा है अथवा शुद्धोऽहं, बुद्धोऽह इत्यादि प्रकार से शुद्ध भावना से जाना जाता है।

२३७. शंका : तो क्या यह गृहस्थों को संभव है ?

समाधान : हाँ, सामायिक आदि के काल मे यह गृहस्थों को भी संभव है अर्थात्, गृहस्थजनों को भी इस प्रकार की भावना रूप श्रुतज्ञान सभव है। वे भी अनुमान ज्ञान द्वारा परोक्ष रूप से आत्मा को जान सकते है।

२३८. शंका : अनुमान ज्ञान से आत्मा कैसे जानी जाती है ?

समाधान : अनुमान ज्ञान, परोक्ष भाव श्रुतज्ञान है जैसे - धूम से अग्नि का अनुमान लगाया जाता है उसी प्रकार आगम व आचार्यों के उपदेश से आत्मा का अनुमान लगाया जाता है।

२३९. शंका : क्या अनुमान ज्ञान प्रमाण नहीं है ?

समाधान : नहीं, ऐसा नही कहना चाहिए क्योंकि अनुमान ज्ञान भी मतिज्ञान का अभिनिबोध ज्ञान नामक सम्यग्ज्ञान प्रमाण का ही भेद है।

२४०. शंका : तो क्या इस अनुमान ज्ञान से अविरत सम्यग्दृष्टि या देशव्रती भी अपनी आत्मा को जान सकता है ?

समाधान : हाँ, अनुमान ज्ञान से अवश्य जान सकता है।

देखिये - शंका समाधान नं १८०

२४१. शंका : आत्मानुभव करने की क्रमिक विधि क्या है ?

समाधान : देखिये स.सा.आ.गा. १४४

यतः प्रथमतः श्रुताज्ञानावष्टम्भेन ज्ञानस्वभावात्मानं निश्चित्य ततः

खल्वात्मख्यातये परख्याति हेतूनखिला एवेन्द्रियानिन्द्रिय बुद्धिरवधीर्य

आत्माभिमुखीकृतमतिज्ञान तत्त्वतः, तथा नानाविधनय पक्षालम्बनेनानेक विकल्पैर कुयन्तीः श्रुतज्ञान बुद्धिरप्यवधार्य श्रुतज्ञान-तत्त्वमप्यात्माभिमुखी कुर्वन्नत्यन्त-मविकल्पो भूत्त्वा झगित्येव स्वरसत एव व्यक्ती-भवन्तमादि-मध्यान्त-विमुक्त-मनाकुलमेकं केवलमखिलस्यापि विश्वस्योपरि तरन्त-मिवाखणु-प्रतिभासमयमनन्त विज्ञानघनं परमात्मानं समयसारं विन्दन्नेवात्मा सम्यग्दृश्यते ज्ञायते च ततः सम्यग्दर्शनंज्ञानंच समयसार एवा।

अर्थ : प्रथम श्रुतज्ञान के आलम्बन से ज्ञान स्वभाव आत्मा का निश्चय करके और फिर आत्मा की प्रसिद्धि के लिए पर पदार्थ की प्रसिद्धि के कारणभूत इन्द्रियो और मन के द्वारा प्रवर्तमान बुद्धियों को मर्यादा में लेकर जिसने मतिज्ञान तत्त्व को आत्म सन्मुख किया है, तथा जो नाना प्रकार के नय पक्षों के आलम्बन से होने वाले अनेक विकल्पो के द्वारा आकुलता उत्पन्न करने वाली श्रुतज्ञान की बुद्धियों को भी मर्यादा मे लाकर श्रुतज्ञान तत्त्व को भी आत्म सम्मुख करता हुआ अत्यंत विकल्प रहित होकर तत्काल निजरस से ही प्रकट होता हुआ आदि, मध्य और अन्त से रहित अनाकुल केवल एक सम्पूर्ण ही विश्व पर मानो तैरता हो ऐसे अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघन परमात्मा रूप समयसार का जब आत्मा अनुभव करता है, तब उसी समय आत्मा सम्यकृतया दिखाई देता है और ज्ञाता होता है।

२४२. शका : समयसार क्या अनुभूति मात्र है?

समाधान : देखिये स.सा.आ.गा. १४३

यथाखलु भगवान्केवली .... विश्वसाक्षीतया केवलं स्वरूप मेव जानाति नतु. ...... नयपक्ष परिगृह्याति तथा किल यः. .... श्रुतज्ञानात्मक-विकल्प प्रत्युदगमनेऽपि परपरिग्रह प्रतिनिवृत्तौत्सुक्य तया स्वरूपमेव केवलं जानाति न तु....... .. स्वयमेव विज्ञानघनभूतत्त्वात .... नय पक्षं परिगृह्णाति स खलु निखल-विकल्पेभ्यः परतरः परमात्मा ज्ञानात्मा प्रत्यग्ज्यो-तिरात्मख्याति रूपोऽनुभूति मात्र. समयसार॰॥

अर्थ : जैसे केवली भगवान विश्व के साक्षीपनें के कारण केवल स्वरूप को ही मात्र जानते है किन्तु किसी भी नय पक्ष को ग्रहण नहीं करते इसी प्रकार श्रुतज्ञानात्मक विकल्प उत्पन्न होने पर भी पर का ग्रहण करने के प्रति उत्साह निवृत्त हुआ होने से स्वरूप को ही केवल जानते है परन्तु स्वयं ही विज्ञान घन होने से नय पक्ष को ग्रहण नहीं करते वही वास्तव मे समस्त विकल्पों से परे परमात्मा, ज्ञानात्मा, प्रत्यग्ज्योति, आत्मख्याति रूप अनुभूति मात्र समयसार है।

२४३. शंका : क्या वीतराग स्वसंवेदन केवलज्ञानवत् होता है?

समाधान : देखिये स.सा.ता.वृ.गा. १९० पेज २६२

इदमात्म स्वरूपं प्रत्यक्षमेव मयादृष्टं चतुर्थकाले केवलज्ञानिवत्।

अर्थ : यह आत्मस्वरूप मेरे द्वारा चतुर्थकाल में केवलज्ञानियों की भांति प्रत्यक्ष देखा गया है।

२४४. शंका : साक्षात् केवली के ज्ञानवत् ही आत्मा प्रत्यक्ष दिखता है तो फिर श्रुतज्ञान को परोक्ष क्यों कहा?

समाधान : देखिये स.सा./ता.वृ.गा. १९० पेज २६२

यद्यपि केवलज्ञानापेक्षया रागादि-विकल्प-रहितं स्वसंवेदनरूपं भाव-श्रुतज्ञानं शुद्धनिश्चयनयेन परोक्षं भण्यते, तथापि इन्द्रियमनोजनित-सविकल्प ज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षम्। तेन कारणेन आत्मा स्वसंवेदनज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षो भवति, केवलज्ञानापेक्षया पुनः परोक्षऽपि भवति। सर्वथा परोक्ष एवेति वक्तुं नायाति। किंतु चतुर्थकालेऽपि केवलिनः, किमात्मानं हस्ते गृहीत्वा दर्शयन्तिर तेपि दिव्यध्वनिना भणित्वा गच्छन्ति। तथापि श्रवण-काले श्रोतणां परोक्ष एव पश्चात् परम समाधि काले प्रत्यक्षो भवति। तथा इदानीं कालेऽपीति भावार्थः।

अर्थ : यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा रागादि विकल्प रहित स्वसवेदन रूप भावश्रुतज्ञान शुद्ध निश्चय से परोक्ष कहा जाता है तथापि इन्द्रिय मनोजनित सविकल्प ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष है इस प्रकार आत्मा स्वसंवेदन ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष होता हुआ भी केवलज्ञान की अपेक्षा परोक्ष भी है। सर्वथा परोक्ष है ऐसा कहना नहीं बनता। चतुर्थकाल मे क्या केवली भगवान् आत्मा को हाथ मे लेकर दिखाते है वे भी तो दिव्य ध्वनि के द्वारा कह कर चले जाते है, फिर भी सुनने के समय जो श्रोता के लिए परोक्ष है, वही पीछे परम समाधि काल मे प्रत्यक्ष होता है। इसी प्रकार वर्तमान काल में भी समझना।

२४५. शंका : साधुओं को वीतराग चारित्र ही उपादेय है?

समाधान : हाँ, वीतराग चारित्र ही उपादेय है दखिये - **प्रवचनसार तत्त्व प्रदीपिका टीका गाथा ६** में कहा है कि -

संपद्यते हि दर्शनज्ञानप्रधानाच्चारित्राद्वीतरागान्मोक्षः। तत एव च सरागद्देवासुरमनुजराजविभवक्लेशरूपो बन्धः। अतो मुमुक्षुणेष्ट फलत्वाद्वीतराग चारित्रमुपादेयमनिष्ट फलत्वात् सरागचारित्रं हेयम्।

अर्थ : दर्शन, ज्ञान प्रधान चारित्र से वीतराग हो तो मोक्ष होता है। और उससे ही यदि सराग हो तो देवेन्द्र, असुरेन्द्र, नरेन्द्र के वैभव क्लेशरूप बन्ध की प्राप्ति होती है। इसलिए मुमुक्षुओं को इष्ट फल वाला होने से वीतराग चारित्र उपादेय है तथा अनिष्ट फल वाला होने से सराग चारित्र हेय है।

२४६. शंका : "चारित्तं खलु धम्मो" इस शब्द का खुलासा कीजिये।

समाधान : चारित्तं खलु धम्मो ... इत्यादि प्रवचनसार की ७ वीं गाथा है। इसका खुलासा **प्रवचनसार ता.वृ. टीका गाथा ११** में निम्न प्रकार से किया गया है।

"चारित्तं खलु धम्मो" इति वचनात्। तच्च चारित्रमपहृत संयमोपेक्षा-संयमभेदेन सरागवीतरागभेदेनवाशुभोपयोगशुद्धोपयोगभेदेन च द्विधा भवति। तत्र यच्छुद्ध संप्रयोग शब्दवाच्यं शुद्धोपयोग- स्वरूपं वीतराग चारित्तं तेन निर्वाणं लभते। निर्विकल्प समाधिरूप शुद्धोपयोग शक्त्याभावे सति यदा शुभोपयोगरूप सरागचारित्रेण परिणमति तदापूर्वमनाकुलत्व लक्षण पारमार्थिकसुख विपरीतमाकुल-त्वोत्पादकं स्वर्ग सुखं लभते। पश्चात् परमसमाधि-सामग्री-सद्भावे मोक्षं च लभते इति सूत्रार्थः॥

अर्थ : "चारित्र ही वास्तविक धर्म है"। ऐसा वचन होने से वही धर्म दूसरे शब्दो में चारित्र कहा जाता है और वह - (१) अपहृत सयम - उपेक्षा संयम भेद से अथवा (२) वीतराग भेद से अथवा (३) शुभोपयोग - शुद्धोपयोग भेद से दो प्रकार का है। वहाँ जो शुद्ध सप्रयोग शब्द से कहा जाने वाला शुद्धोपयोग स्वरूप वीतराग चारित्र है, उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। निर्विकल्प समाधि रूप शुद्धोपयोग में रहने की शक्ति का अभाव होने पर जब (पूर्वोक्त जीव)

शुभोपयोग रूप सराग चारित्र से परिणत होता है तो अनुकूलता लक्षण पारमार्थिक सुख से विपरीत आकुलता पैदा करने वाला स्वर्ग सुख प्राप्त करता है तथा बाद में परम समाधि रूप मोक्ष की कारणभूत वीतराग चारित्र रूप सामग्री के सद्भाव में मोक्ष प्राप्त करता है।

२४७. शंका : अविरत सम्यग्दृष्टि को वीतराग चरित्र क्यों नहीं पाया जाता है?

समाधान : देखों **प.प्र.टी. अ. २ गा. १७** में कहा है कि -

तेषां शुद्धात्मोपादेय भावना रूपं निश्चय-सम्यक्त्वं विद्यते परं किन्तु चारित्रमोहोदयेन स्थिरता नास्ति व्रत प्रतिज्ञा भङ्गो भवतीति तेन कारणेनासंयता वा भण्यन्ते।

अर्थ : उनको (अविरत सम्यग्दृष्टि को) शुद्धात्म उपादेय है ऐसी भावना रूप निश्चय सम्यक्त्व होता है किन्तु उनको चरित्रमोह के उदय से स्थिरता नहीं है, व्रत प्रतिज्ञा भङ्ग हो जाती है, उस कारण से उसे असंयत कहा जाता है।

२४८. शंका : तो क्या स्थिरता को ही निश्चय चारित्र कहते है?

समाधान : हाँ, देखो **नि.सा.ता.वृ.गा. ५५**

स्वस्वरूपाविचल स्थिति रूपं सहज निश्चय चारित्रम्।

अर्थ : निज स्वरूप में अविचल स्थिति रूप सहज निश्चय चारित्र है।

अथवा

आत्माधीन ज्ञान सुख स्वभावे शुद्धात्मद्रव्ये यन्निश्चल निर्विकारानुभूति रूपवस्थानं, तल्लक्षण निश्चय चरित्राज्जीवस्य समुत्पद्यते। प्र.सा.ता.वृ. ६

अर्थ : आत्माधीन ज्ञान व सुख स्वभाव रूप शुद्धात्म द्रव्य में निश्चल निर्विकार अनुभूति रूप जो अवस्थान है वही निश्चय चारित्र का लक्षण है।

२४९. शंका : निश्चय या वीतराग चारित्र के पर्यायवाची नाम क्या-क्या है?

समाधान : देखें **नय.च.वृ.गा. ३५६**

समदा तह मज्झत्थं सुद्धणे भावो य वीयरायत्तं।
तह चारित्रं धम्मो सहाव आराहणा भणिया॥

अर्थ : समता, माध्यस्थ, शुद्धोपयोग, वीतरागता, चारित्र, धर्म, स्वभाव की आराधना ये सब एकार्थ वाची है।

२५०. शंका : चतुर्थ गुणस्थानवर्ती को निश्चय सम्यक्त्व तो पाया ही जाता है ? (तो क्या वह उपचार से है ?)

समाधान : हाँ, वीतराग चारित्र के साधन भूत निश्चय सम्यक्त्व तो पाया ही जाता है। किन्तु उसे वास्तव में सराग या व्यवहार ही समझना चाहिए। देखिये **प.प्र.टी.आ.२ गा.१७**

या पुनः तेषां सम्यक्त्वस्य निश्चयसम्यक्त्वसंज्ञा वीतराग चारित्राविनाभूतस्य निश्चय सम्यक्त्वस्य परम्परया साधकत्वादिति। वस्तु- वृत्त्या तु तस्सम्यक्त्वं सराग सम्यक्त्वास्यं व्यवहार सम्यक्त्वमेवेति।

अर्थ : उनके सम्यक्त्व को जो निश्चय सम्यक्त्व कहा गया है वह वीतराग चारित्र के अविनाभूत निश्चय सम्यक्त्व का परम्परा से साधक है इसलिए (कारण में कार्य के उपचार से कहा है) वास्तव में तो वह सम्यक्त्व, सराग सम्यक्त्व नाम वाला व्यवहार सम्यक्त्व ही है।

२५१. शंका : तो क्या वीतरागी निर्ग्रन्थ साधू ही निश्चय सम्यग्दृष्टि है ऐसा कही स्पष्ट प्रमाण है ?

समाधान : हाँ, देखों **मोक्ष पाहुड गा.१४** में स्पष्ट कहा है कि -

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ सो णियमेण

सम्मत्त परिणदो पुण खवेइ दुट्ठट्ठ कम्मेहिं ॥

अर्थ : जो साधु अपनी आत्मा में रत् है अर्थात् लीन है वे वीतराग/निश्चय सम्यग्दृष्टि है। सम्यक्त्व भाव से युक्त होते हुए वे दुष्ट अष्टकर्मों का क्षय करते है।

२५२. शंका : वीतराग निश्चय सम्यग्दृष्टि का उपभोग क्या बंध का कारण नहीं है ?

समादान : हाँ, देखो **स.सा.गा. १९६**

जह मज्झं पिवमाणो अरदि भावेण मज्जदि ण पुरिसो।

दव्वुवभोगो अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव ॥

अर्थ : जैसे कोई पुरुष मदिरा को अरति भाव से पीता हुआ मतवाला नहीं होता, इसी प्रकार ज्ञानी भी द्रव्य के उपभोग के प्रति अरति वर्तता हुआ बंध को प्राप्त नहीं होता है।

२५३. शंका : वीतराग सम्यग्दृष्टि तो ध्यान में लीन होता है उसे उपभोग कैसे?

समाधान : (१) सामान्य भाषा में जिस शिला, काष्ठ या तृण संस्तर पर वे बैठते है वह उपभोग है। जिस वन या महल में ठहरे हो वह भोग है। वहाँ के चित्र-विचित्र दृश्य, पक्षियों की आवाज, शीत में धूपादि, ग्रीष्म में छाया आदि ये सभी लौकिक जनो में भोग-उपभोग के हेतु होने से भोग या राग होने से बंध के कारण है वही सामग्री ध्यानलीन मुनियों को उसमें रागपूर्ण ध्यान न होने से बंध के कारण नहीं है।

(२) स.सा.गा. २१८ को भी देखें -

णाणी रागप्पजहो, सव्वदव्वेसु कम्ममज्झ गदो।

णो लिप्पदि रजएण दु, कद्दम मज्झे जहा कणयं ॥

अर्थ : सम्पूर्ण पदार्थो के प्रति राग से रहित ज्ञानी कर्मों के मध्य रहा हुआ भी कर्म रज से लिप्त नहीं होता है - जैसे सोना कीचड़ में पड़ा हुआ भी लिप्त नहीं होता है।

(३) जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलणि-पत्तं सहाव पयडीए।

तह भावेण ण लिप्पइ कसाय-विसएहिं सत्पुरिसो ॥

(भा.पा.गा. १५४)

अर्थ : जिस प्रकार जल में रहता हुआ भी कमल पत्र अपने स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार ज्ञानी विषय और कषाय से संलग्न होने पर भी अपने भावों से उनके साथ लिप्त नहीं होता है।

(४) ज्ञानी विषय संगेऽपि विषयैनैर्व लिप्यते।

कनकं मल मध्येऽपि न मलै रूप लिप्यते ॥ यो सा.आ. ४/१९

अर्थ : जिस प्रकार कीचड़ के बीच पड़ा हुआ भी स्वर्ण कीचड़ से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानी पंचेन्द्रियों के विषयों को भोगता हुआ भी विषयो से लिप्त नहीं होता है।

२५४. शंका : वीतराग सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को विषय-भोग किस प्रकार संभव है?

समाधान : पहले बता चुके है स्पर्शनेन्द्रिय के आठ स्पर्श, रसनेन्द्रिय के पांच रस, घ्राणेन्द्रिय के दो गंध, चक्षु इंद्रिय के पांच वर्ण तथा कर्णेन्द्रिय के सात स्वर मुनियों को भी संभव है किन्तु वे उसमें लिप्त नहीं होते है।

२५५. शंका : वीतराग निश्चय सम्यग्दृष्टि को प्रत्येक समय प्रत्येक कार्यों से निर्जरा होती है?

समाधान : हाँ, देखो स.सा.गा. १९३ मे कहा है -

उवभोग-मिंदियेहिं, दव्वाण-मचेदणाण-मिदराणं।

जं कुणदि सम्मदिट्ठि तं सव्वं णिज्जर-णिमित्तं॥

अर्थ : वीतराग निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव जो अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग करता है वह सभी उसके लिए निर्जरा का निमित्त है।

२५६. शंका : यहाँ चेतन भोग से क्या अर्थ लेना?

समाधान : आहार दाता, शुद्ध-प्रासुक आहार देता है, कभी-कभी मार्ग में कमण्डलु लेकर चलता है, पाद मर्दनादि रूप वैय्यावृत्ति करता है, वृद्धावस्था में या अस्वस्थावस्था मे चलने में सहारा देता है। अत: भक्त सेवक या शिष्य चेतन भोग है।

२५७. शंका : आप वीतराग सम्यग्दृष्टि ही क्यों कहते है मात्र सम्यग्दृष्टि ही क्यों नहीं कहते हो?

समाधान : हाँ, सप्तमादि गुणस्थानवर्ती वीतराग सम्यग्दृष्टि जीवों के उपयोग मे राग न होने से तथा वीतरागता होने से वे सभी, तभी तक उसकी बाह्य रागादि निमित्तक पदार्थ निर्जरा के हेतु कहे है। इस विषय को **स.सा.आ.टी.गाथा** १९३-१९४ में कहा है।

''रागादि भावानां सद्भावे मिथ्यादृष्टेरचेतनान्यद्रव्योपभोगो बंध निमित्तमेव स्यात्। स एव रागादि भावानामभावेन सम्यग्दृष्टे-निर्जरा निमित्तमेव स्यात्। एतेन द्रव्य निर्जरा स्वरूपमावेदयतिम् ॥१३॥''

अथ भाव निर्जरा स्वरूपमावेदयति-स तु यदा विद्यते तदा मिथ्यादृष्टेः रागादि भावानां सद्भावेन बन्ध निमित्तंभूत्वा निर्जीर्यमाणोप डव्यनिर्जीर्णः सन् बन्ध एव स्यात्। सम्यग्दृष्टे स्तु रागादि भावानामभावेन बन्ध निमित्तमभूत्वा केवलमेव निर्जीर्यमाणो निर्जीर्णः सन्निर्जरैव स्यात्॥१४॥